त्रिधारा

अनुवादकर्ता

लल्लीप्रसाद पाण्डेय

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

प्रथमावृत्ति] १९२५ [मूल्य १) रु०

एक बात

'त्रिधारा' में तीन कहानियाँ हैं। ये बाबू प्रभातकुमार मुखोपाध्याय बार-एटलॉ की 'गल्पवीथि' से ली गई हैं।

'लेडी-डाकृर' कहानी के सम्बन्ध में लेखक ने यह सफ़ाई दी है—"किसी-किसी ने कहा है कि उक्त कहानी की नायिका को उक्त रूप में अङ्कित करके मैंने बेजा काम किया है,—मेरे इस कार्य से देश की तमाम लेडी-डाकृरिनें मर्माहत हुई हैं। किन्तु मैंने किया ही क्या है? तेजकुँवरि के चित्र में मैंने असच्चरित्रता का धब्बा नहीं लगने दिया। मैंने तो इतना ही दिखलाया है कि वह एक स्वामी को खोजने के लिए—जिसे अँगरेज़ी में husband-hunting कहते हैं—विशेष रूप से चेष्टा कर रही है। यूरोपीय समाज में (अर्थात् जिस समाज के आंशिक अनुकरण में ये सब सम्प्रदाय चलते-फिरते हैं) यह कभी पापकार्य नहीं माना गया। हाँ, इसमें हीनता अवश्य है। एक लेडी-डाकृर को मैंने फीके रङ्ग से अङ्कित किया है, इससे मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं कि तमाम लेडी-डाकृरिनें इसी श्रेणी की हुआ करती हैं। हमारे देश में पाखण्डी साधु-

संन्यासियों की कमी कहाँ। मैंने दो-चार पाखण्डी संन्यासियों का चित्र भी (देखो, 'नवीन-संन्यासी') अङ्कित किया है, इससे यदि कोई कहने लग जाय कि मेरी (लेखक की) राय में सभी संन्यासी पाखण्डी हैं तो मेरे प्रति क्या यह अविचार न होगा ?"

इस संग्रह की पहली कहानी के प्लाट में किञ्चित् परिवर्त्तन किया गया है। आशा है, पाठकों को ये कहानियाँ पसन्द आवेंगी।

सागर।
मार्गशीर्ष, संवत् १९७६ } अनुवादक

सूची

त्रिधारा

लेडी-डाक्टर

१

बुँदेलखण्ड में, नदी-किनारे एक मामूली बँगले के बरामदे में आरामकुर्सी पर बैठा हुआ, अँगरेज़ी पायजामा पहँने, पचोस वर्ष का एक सुन्दर युवा प्राभातिक चाय-पान कर रहा था।

युवा का नाम है बलदेवसिंह वर्मा। यह है डेप्युटी कलेक्टर—महकमे माल का दूसरा हाकिम। इसके पिता एक प्रख्यात, प्रथम ग्रेड के डेप्युटी थे। पेंशन ग्रहण करते समय साहबों से कह-सुनकर, तुरन्त ही बी० ए० पास कर निकले हुए, इस बड़े बेटे को डेप्युटी कलेक्टरी में भर्ती कराकर वे छः महीने पश्चात् निश्चिन्त मन से परलोक-यात्री हो गये। यह तीन वर्ष की बात है।

भादों का महीना है। नदी के दोनों किनारे जल-परिपूर्ण हैं। दूर, तीन-चार मछुओं की नावें देख पड़ती हैं। मेघ-भार से आकाश स्तम्भित है। नदी के उस पार बीच-बीच में बिजली चमक जाती है।

बरामदे के नीचे ही फूल-बाग़ है। सफ़ेद, लाल, नीले—रङ्ग-बिरङ्ग देशी और विलायती फूल खिले हुए हैं। रात को वर्षा के जल में फूलों का मधु धुल गया है, निराश मन से भौंरे गुन-गुन स्वर में विलाप करते हुए इधर-उधर उड़ रहे हैं। बाँस की खपच्चियों से बाग़ घिरा हुआ है। जगह-जगह पर इन खपच्चियों से बन्दरबेल, अपना अञ्चल फैलाये, लिपटी हुई है। बाग़ के अन्त में बाँस का फाटक है।

बलदेवसिंह सोलहों आने साहब न होने पर भी तन-मन से साहब है। बाबू कहने से वह नाराज़ नहीं होता, पर साहब कहा जाय तो ख़ुश होता है। घर में धोती पहनने में उसे शर्म नहीं लगती किन्तु अँगरेज़ी पायजामे को ही वह सुरुचि-सङ्गत समझता है। रसोइया महाराज है, वह पूरे हिन्दुआनी ढँग पर रसोई बनाता है, किन्तु खानसामा ख़लील मियाँ मुर्ग़ी पका लाता है और टेबिल पर छूरी-काँटा-चम्मच रखकर खाना चुन देता है। इस बँगले में बलदेवसिंह अकेला रहता है—विपत्नीक है। यहाँ उसका और कोई आत्मीय-स्वजन नहीं।

चाय-पान के अनन्तर बलदेवसिंह ने बेहरा को बुलाया। आज्ञा के अनुसार वह उसका चुरुट, तम्बाकू का डिब्बा और

दियासलाई ले आया। चुरुट में तम्बाकू रखकर बलदेवसिंह चुपचाप बैठा-बैठा धूम-पान करने लगा।

मुँह में चुरुट दबाये, साहबी पोशाक पहने बाबू बिलकुल साहब की ही तरह न सही तो कम से कम यूरेशियन की तरह तो देख पड़ता है। तुम भारतीय भद्र-सन्तान हो—कैसी ही साहबी पोशाक क्यों न पहन लो, तुम्हारे मुख का लालित्य, बुद्धि और सौजन्य की आभा तुम्हारी भारतीयता को प्रकट कर देगी। किन्तु ओठों-तले चुरुट को दाबते ही मुँह का भाव कुछ परिवर्तित हो जाता है—ऐसा जान पड़ता है कि अत्यल्प कारण से ही शायद यह डैम कहकर गरज उठे! इसी से बेचारे बलदेव-सिंह ने बड़े कष्ट से चुरुट-सेवन का अभ्यास किया है। साहबपने में प्रवृत्त होकर उसने जब पहले-पहल चुरुट का आश्रय लिया था तब वह क्या मामूली आफ़त थी! पहली बार चुरुट पीने के पश्चात् दौड़कर बरामदे के कोने में वह एक ऐसा काम कर बैठा था कि जिसका नाम लेना भद्र-समाज में निषिद्ध है। माथे पर कई लोटे ठण्डा जल ढालने, बिछौने पर लेटकर दो-घण्टे तक पङ्खे की हवा का सेवन करने और सोने के पश्चात् उसका जी ठिकाने हुआ था। तब, बहुत दाम देकर वह ख़ूब नरम तम्बाकू ख़रीद लाता था तथापि धुएँ से उसकी जीभ बिलकुल जल जाती थी। और इतनी अधिक जल जाती थी कि नमकीन चीज़ें खाते समय उसकी आँखों से आँसू टपकने लगते थे। अब वे दिन नहीं हैं। नरम तम्बाकू तो अब उसे पसन्द ही नहीं।

एक सचित्र विलायती मासिक पत्र के पन्ने उलटते-उलटते बलदेवसिंह धूम-पान करने लगा। क्रम से आठ बज गये। बादल हटने से ज़रा धूप का आभास देख पड़ा। अर्दली पोस्ट-आफ़िस से बलदेवसिंह की डाक ले आया।

डाक में था एक समाचारपत्र, एक अँगरेज़ की दूकान का सूचीपत्र, एक घर की चिट्ठी, और एक और चिट्ठी जिस पर किसी अपरिचित स्त्री के हाथ का लिखा पता था। कौतूहल के कारण बलदेवसिंह ने इसी पिछले पत्र को खोलकर पहले पढ़ा। उस पत्र की नक़ल यह है—

लाहोर।

महाशय,

दया करके आपने मुझे जो नियुक्ति-पत्र भेजा है उसे पाकर मैं आपको असंख्य धन्यवाद देती हूँ।

मैं यहाँ से कल रवाना हूँगी और शनिवार को सबेरे सात बजे वाली गाड़ी से वहाँ पहुँचूँगी। उस ओर मैं कभी गई नहीं। मेरे लिए वहाँ की सभी बातें अपरिचित हैं। नहीं जानती, वहाँ लेडी डाक्टर के रहने के लिए कोई निर्दिष्ट स्थान है या नहीं। यदि न हो तो फिर मैं कहाँ उतरूँगी और क्या करूँगी। कुछ भी समझ नहीं सकती। मेरे सौभाग्य से आप पञ्जाबी सज्जन हैं। आप ही जब कि अस्पताल-कमिटी के सेक्रेटरी हैं तब आशा करती हूँ कि नवीन स्थान में पहुँचने पर मुझे किसी

असुविधा में न पड़ना होगा। जान पड़ता है, आप वहाँ सपरिवार निवास करते हैं। अतएव, यदि आपको असुविधा न हो तो क्या मुझे वहीं, आपके यहाँ, दो-एक दिन ठहरने के लिए स्थान मिल सकेगा? इसी बीच मैं अपने लिए स्थान का प्रबन्ध कर लूँगी।

मैं अपनी आया को साथ लाऊँगी—वह मेरे लिए रसोई आदि बना देगी। कृपा करके मेरे लिए एक मुसलमान खानसामा का प्रबन्ध कर रखिएगा। आपको यह कष्ट देने के लिए मैं बाध्य हुई—आशा है, आप मेरा अपराध क्षमा करेंगे।

मैं क्या एक और बात कहने का साहस कर सकती हूँ? मैं असहाय स्त्री हूँ, वहाँ स्टेशन पर उतरूँगी। नहीं कह सकती, आपके स्थान को ढूँढ़ सकूँगी या नहीं। यदि कृपापूर्वक गाड़ी के समय स्टेशन पर पधारें तो अत्यन्त उपकार हो।

विनीता
कुमारी तेजकुँवरि सोंधी

देशी भाषा में पत्र लिखा होने के कारण बलदेवसिंह पहले तो ज़रा नाराज़ हुआ। किन्तु लिफ़ाफ़े पर सरनामा देखकर उसे कुछ सान्त्वना हुई। सरनामे पर 'बाबू' नहीं, एस्कायर लिखा है। सोचा—अँगरेज़ी में तादृश व्युत्पन्न नहीं जान पड़ती—इसी से देशी भाषा में लिखा है—उसका उद्देश मेरा

असम्मान करने का कदापि नहीं। वह अँगरेज़ी में स्त्रियों के ढँग पर लिखे हुए सरनामे को देर तक देखता रहा।

उसकी लिपि देखते-देखते बलदेव के मन में एक अपूर्व रस का सञ्चार हुआ। जो पञ्जाबी ललनाएँ हमारी नानी के समय बिलकुल ही निरक्षर थीं,—हमारी मा-मौसी के समय ज्यों-त्यों करके चिट्ठी लिख लेती थीं, और बहुत हुआ तो रामायण-महाभारत पढ़ लेती थीं—जो वर्त्तमान काल में मासिक पत्र और उपन्यास आदि की अथक पाठिका होने पर भी अब तक चिट्ठी लिखने में हिज्जे की ग़लतियाँ कर बैठती हैं—उसी जाति की एक महिला ने साफ़ अँगरेज़ी अक्षरों में सरनामा लिखा है!

बलदेव के मन में एक नवीनता की आकांक्षा जाग उठी। जिस श्रेणी की पञ्जाबी कन्याओं के साथ वह परिचित है—जो साड़ी के नीचे जाँघिया पहनती हैं, कमर में रेशमी रूमाल खोंस लेती हैं किन्तु साया पहनने को जो क्रिस्तानपन समझती है—यह तेजकुँवरि उस श्रेणी की लड़की नहीं है। वह श्रीमती तेजकुँवरि देवी नहीं—मिस सोंधी है। पैरों में मोज़े पर जूते हैं, मुँह घूँघुट के भीतर नहीं और घोड़ा-गाड़ी की खिड़की को वह बन्द नहीं कर लेती। वह माईजी नहीं—दीदी नहीं—मेम साहबा है।

आकाश में फिर बादल जमने लगे, नदी में हिलोड़ें ज़ोर मारने लगीं, बग़ीचे में लाल गुलाब हवा के झोकों से और

भी झूमने लगे; बलदेव के मन में धीरे-धीरे एक कल्पना-मूर्त्ति गठित होने लगी।

२

दूसरे दिन सवेरे बलदेवसिंह बहुत ही जल्द उठ बैठा। आज सात बजेवाली गाड़ी से मिस सोंधी—तेजकुँवरि—आवेगी। झटपट चाय-पान करके, बलदेव दर्पण के आगे खड़ा होकर बड़ी सावधानी से बाल बनाने लगा। हजामत बनाकर हाथ-मुँह धोया, फिर होशियारी के साथ वेश-विन्यास किया। पौने सात बजे वह प्रस्तुत हो गया। मुँह में चुरुट दबाकर, हाथ में छड़ी ले, वह स्टेशन की ओर चल दिया।

चिट्ठी पाने पर कल बेचारा विषम समस्या में पड़ गया था। मिस सोंधी ने जैसा सोचा था—कि उसके घर में स्त्री-कन्या हैं—वैसा तो दुर्भाग्य-वश (सौभाग्य से ?) सत्य नहीं है। बँगले में स्थान यथेष्ट है—पर सूने घर में एक अपरिचिता अनात्मीया युवती को ठहराना कैसे ठीक होगा? लोग क्या कहेंगे? और, वह युवती ही क्यों सम्मत होने चली?

तो फिर तेजकुँवरि को कहाँ उतारा जाय? सब-डिविज़नल आफ़िसर सुरेश बाबू के स्वयं वैसे 'हिन्दू' न होने पर भी उनकी गृहिणी अद्भुत निष्ठावती हैं। यह आशा नहीं कि वे इस जूता-मोज़ा-लेस-ब्रोच-धारिणी को आदर के साथ अपने अन्तःपुर में स्थान प्रदान करें। तो फिर उसके लिए क्या

होगा? एक डाकबँगला है। किन्तु डाकबँगले में उतरे तो वहाँ का प्रतिदिन का ख़र्च पाँच-छः रुपये है। वह ग़रीब तो साठ रुपये मासिक वेतन पर आ रही है। यदि किराये का मकान ढूँढ़ने में दो-चार दिन लग जायँ तो क्या वह इतना ख़र्च कर सकेगी? हाँ, ठीक हो गया। इस बार बलदेव की समझ में बात आ गई। तेजकुँवरि को डाकबँगले में ही ठहरा दिया जाय। डाकबँगले का खानसामा सिर्फ़ चाय पिलावेगा—बाक़ी खाने-पीने की चीज़ें बलदेव अपने बँगले से भेज देगा। इससे ख़र्च बहुत कुछ घट जावेगा—तब प्रतिदिन दो रुपये से अधिक डाकबँगले में ख़र्च न होगा। इतना तो तेजकुँवरि अनायास ही दे सकेगी।

कल रात्रि को बहुत देर तक जागते रहकर उक्त रूप से सोच-विचारकर बलदेव ने यह सब स्थिर कर रक्खा है। सोचते-सोचते अधिक रात होने पर उसका सिर इतना गरम हो गया था कि किसी तरह नींद न आना चाहती थी। तब स्नान-गृह में जाकर हाथों-पैरों पर ठण्डा पानी ख़ूब ढाला और कान तथा मुँह को अच्छी तरह धोया। ऐसा करने पर किसी प्रकार आँख लगी।

स्टेशन बहुत दूर नहीं—पाव घण्टे में ही बलदेव प्लेटफ़ार्म पर जा खड़ा हुआ। गाड़ी जब भीषण गर्जन के साथ प्लेट-फ़ार्म की सीमा में प्रवेश करने लगी तब बलदेव के हृदय में किसी ने मानो प्रबल रूप से ता-थेई ता-थेई मचा दी।

गाड़ी खड़ी हो गई। ज़नानी गाड़ी से तेजकुँवरि की आया मुँह निकालकर 'कुली कुली' चिल्लाने लगी। बलदेव उसी ओर गया। देखा, अरे छिः—घाँघरा पहननेवाली आया नहीं—सुत्थन पहने एक पञ्जाबिन नौकरनी उतर रही है।

उसके पीछे तेजकुँवरि भी उतरी। बलदेव ने देखा—बादामी रङ्ग की पारसी साड़ी और उसी रङ्ग के आलपाका की जाकेट पहने, माथे में लेस (फीता) लगाये एक उन्नीस-बीस वर्ष की गौराङ्गी युवती चकित दृष्टि से मानों किसी को खोज रही है।

बलदेव ने उसी दम आगे बढ़कर, सिर से टोपी उतारकर कहा—"Have I the pleasure of speaking to Miss Sondhi?" (क्या मैं कुमारी सोंधी के साथ बातचीत करने का सुख प्राप्त कर रहा हूँ?)

तेजकुँवरि ने दो क़दम आगे बढ़ ज़रा-सा झुककर नमस्ते करके कहा—जी हाँ, मैं ही हूँ। क्या आपको मिस्टर सिंह ने भेजा है?

"मैं ही मिस्टर सिंह हूँ।"

"ओह, आप ही हैं! मैंने सोचा, आप उनके छोटे भाई-वाई हैं। आपने स्वयं यहाँ आने का कष्ट किया, मेरे लिए यह आशातीत है।"

बलदेव ने अँगरेज़ी से अनुवाद करके कहा—कष्ट काहे का, आनन्द ही है। गाड़ी में आप को कुछ दिक्कत तो नहीं हुई?

"जी नहीं। विशेष कुछ नहीं।"

इतने में ही कुलियों ने तेजकुँवरि का असबाब सिर पर उठा लिया। बलदेव ने पूछा—कुछ ब्रेकवान में है?

"जी नहीं, ब्रेकवान में कुछ नहीं। एक निवाड़ का पलँग, दो टेबिलें, एक आलमारी और चार कुर्सियाँ मालगाड़ी में बुक करा दी गई हैं। बतलाइए, उनके आने में कै दिन लगेंगे?"

"मालगाड़ी से तो सामान देरी में आवेगा—एक हफ्ते के लगभग लगेगा। आइये।"

तेजकुँवरि धीरे-धीरे बलदेव की पार्श्ववर्तिनी होकर चलने लगी। स्टेशन पर जितने आदमी थे सब इस नवपर्याय के जीव को आँखें फाड़कर देखते रह गये।

रास्ते में चलते-चलते तेजकुँवरि ने पूछा—यहाँ आपके घर कौन-कौन हैं?

"यहाँ तो कोई नहीं है।"

"कोई नहीं? तो मैं वहाँ कैसे चलूँगी?"

तेजकुँवरि की सङ्कोच-मिश्रित यह भीति देखकर बलदेव मन ही मन प्रसन्न हुआ। उसने कहा—मैं अपने घर कब लिये चलता हूँ—आपको मैं डाकबँगले में उतारूँगा।

तेजकुँवरि शङ्कित होकर बोली—डाकबँगले में?—वहाँ तो बहुत खर्च लगेगा!

बलदेव—उसके लिए आप चिन्ता न करें।

तेजकुँवरि ने बलदेव को कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टि से देखा।

क्रम से दोनों डाकबँगले में पहुँचे। खानसामा ने हाकिम को सलाम करके एक कमरा खोल दिया।

बलदेव ने पूछा—चाय का पानी तैयार है?

"जी हाँ हुज़ूर।" बलदेव का अर्दली पहले ही खानसामा को इत्तिला दे आया था कि लेडी-डाक्टर आ रही है।

बलदेव ने कहा—मेम साहब के लिए चाय ले आओ।

खानसामा ने पूछा—"हुज़ूर, छोटी हाज़िरी ले आऊँ या सिर्फ़ चाय?"—बेचारा खानसामा अच्छी तरह खड़ी बोली बोलना न जानता था परन्तु साहबों के साथ बिना खड़ी बोली बोले गुज़र नहीं।

खानसामा को छोटी हाज़िरी लाने का हुक्म देकर, तेज-कुँवरि की ओर देखकर बलदेव ने कहा—तो अब आप यहाँ हाथ-मुँह धोकर ज़रा आराम करें। ग्यारह बजे हमारे बँगले से आपके लिए ब्रेक फ़ास्ट आवेगा। जो और कुछ दरकार हो तो—

तेजकुँवरि—बहुत अच्छा। आपकी इस दया को मैं कभी न भूलूँगी। क्या मैं एक बात कह सकती हूँ?

"कहिए।"

"देखिए, डाकबँगले में बहुत ख़र्च लगता है। यद्यपि आपने ख़र्च देने को कहा है, फिर भी नाहक़ रुपये बिगाड़ना अच्छा नहीं। जो आपको असुविधा न हो तो आज उस वक़्त ही एक घर का प्रबन्ध कर लिया जाय।"

बलदेव ने सोचा, मैंने यह तो कहा ही नहीं कि मैं डाक-बंगले का ख़र्च दूँगा। तेजकुँवरि ने यह कैसे समझ लिया! ख़ैर, मैं ही दे दूँगा। प्रकाश्य में कहा—अच्छा, आज मकान ढूँढ़ने के लिए आदमी भेजूँगा।

"तो मैं कल से काम आरम्भ कर दूँ?"

"जी हाँ, मैं कल सबेरे आकर आपको अस्पताल ले चलूँगा—सब सँभलवा दूँगा।"

"तो अब आप चले—कल वहीं सबेरे आपके दर्शन होंगे?"—तेजकुँवरि का स्वर मानो बड़ी निराशा से पूर्ण हो गया।

बलदेव—यदि कोई ज़रूरत हो तो—

पास सरककर, विनती के स्वर में, तेजकुँवरि ने कहा—देखिए, मैं इस अपरिचित स्थान में, आई हूँ। यहाँ आपके सिवा मेरा और कोई नहीं। यदि आप मेरी कुछ खोज-ख़बर न लेंगे—

बलदेव ने स्निग्ध-कण्ठ से कहा—अच्छा, मैं उस वक़्त फिर आपका कुशल-समाचार लेने आऊँगा।

"तो कै बजे आइएगा?"

"यही पाँच के लगभग।"

"तो आप यहाँ आकर मेरे साथ चाय पीजिएगा?"

"बहुत अच्छा" कहकर और टोपी उठाकर बलदेव बिदा हुआ।

खानसामा चाय और अण्डे आदि ले आया। कमरे में प्रवेश कर, टेबिल के पास बैठकर, छोटी हाज़िरी खाते-खाते तेजकुँवरि बोली—खानसामा!

"हुजूर।"

"बतलाओ, हम कौन हैं?"

"हुजूर, आप मेम-डाक्टर हैं।"

"हाँ—हम यहाँ मेम-डाक्टर होकर आई हैं। तुम्हारी बीबी कहाँ है?"

"यहीं है हुजूर। बावर्चीख़ाने से पूरब की तरफ़ जो वह टीन की छत देख पड़ती है, वही हमारा सरकारी मकान है।"

मुर्ग़ी के अण्डे के पीले अंश को छुरी से टोस्ट पर चुपड़ते-चुपड़ते तेजकुँवरि ने कहा—तुम्हारी बीबी को या लड़के-बच्चों को कभी कुछ बीमारी हो तो हमें ख़बर देना। हम आकर देख जायँगी और दवा देंगी। हम कुछ फ़ीस न लेंगी—समझा?

खानसामा ने सलामकर कहा—हुजूर की मेहर्बानी है।

तेजकुँवरि चाय पीने लगी। कुछ ठहरकर पूछा— जो बाबू हमें अपने साथ यहाँ लिवा लाये थे वे कौन हैं?

खानसामा—सिंह साहब—यहाँ के हाकिम।

"मुन्सिफ़ हैं या डेप्युटी?"

"डेप्युटी।"

"कितनी तनख़्वाह पाते हैं?"

"ढाई सौ रुपये।"

"इनके कितने लड़के-बच्चे हैं?"

"हुज़ूर, मैं क्या जानूँ—उनके लड़के-बच्चे तो यहाँ कोई रहते नहीं। हाँ, सुना अलबत है कि उनकी बीबी ज़िन्दा नहीं—उसको मरे एक वर्ष हो गया।"

तेजकुँवरि ने मन ही मन कहा—आफ़त टली। प्रकाश्य में कहा—अहा! बड़े भले आदमी हैं।

"सुना है कि इनके बाप भी डिप्युटी थे—८००) का महीना था।"

तेजकुँवरि ने ज़रा मुसकाकर और आँख नचाकर पूछा—अच्छा खानसामा, सिंह साहब का मिजाज़ और चालचलन कैसा है?

खानसामा ज़रा चुप रहकर बोला—हुज़ूर, हम ग़रीब नौकर-चाकर हैं। वे बड़े आदमी—हाकिम हैं। उनके मिजाज़ और चालचलन की बात हम क्या जानें?

चाय का प्याला ख़ाली करके रूमाल से मुँह पोंछते-पोंछते तेजकुँवरि बोली—सिंह साहब शराब-वराब पीते हैं?

इस बार खानसामा ज़रा रूखा होकर बोला—हुज़ूर, मुझे कुछ मालूम नहीं।

टेबिल पोंछकर वह चला गया।

एक आराम-कुर्सी पर लेटकर तेजकुँवरि ने कहा—ओ सुन्दर आओ न—ज़रा बूट तो उतार लें—पैर जकड़ गये।

सुन्दर बूट का फ़ीता खोलने लगी। तेजकुँवरि ने कहा—सुन लिया सुन्दर, खानसामा क्या कह गया ?

"सुना तो।"

"कैसा मालूम होता है। जाल में फँसेगा न ?"

"आदमी तो यों ही बौड़म-सा जँचा।"

"देखा जायगा" कहकर तेजकुँवरि एक रेलवे-सिगरेट पीने लगी।

३

एक महीना हो गया। कोई एक हफ़्ते के बाद ही दशहरे की छुट्टी के लिए कचहरी बन्द होगी।

बलदेवसिंह ख़ज़ाने में बैठकर काम कर रहा था। सब डिविज़नल अफ़सर सुरेश बाबू ने आकर कहा—बलदेव, ज़रा इधर तो आओ। बलदेव उठकर सुरेश बाबू के साथ बरामदे में चला गया। सुरेश बाबू ने बहुत ही धीरे-धीरे कहा—आज शाम को हमारे बँगले पर आना। एक ख़ास बात है।

सुरेश बाबू के मुँह का भाव मानो कुछ अप्रसन्न है। यह देखकर बलदेव ने पूछा—क्यों, क्या मामला है ?

"वहीं कहूँगा। ज़रूर आना—" कहकर सुरेश बाबू अपने इजलास पर चले गये।

सुरेश बाबू का साँवला रङ्ग और दुहरा बदन है। आँखें बड़ी-बड़ी हैं। समुज्ज्वल बुद्धि है। सिर में सामने की

बाल नहीं। सरकार में कार्यकुशल राजपुरुष की हैसियत से उनका नाम भी ख़ूब है। बलदेव को ये बाल्यकाल से ही जानते हैं और उस पर विशेष स्नेह भी रखते हैं। उसके पिता के साथ इन्होंने कई जगह काम किया है।

बलदेव ख़ज़ाने में लौटकर अपनी जगह बैठा-बैठा सोचने लगा कि आज सुरेश बाबू क्यों मुझे इस तरह ताकीद करके आने को कह गये हैं। उनका चेहरा आज ऐसा उदास क्यों था? पहले यह अधिकांश सुरेश बाबू के बँगले में बैठकर ही सन्ध्या का समय बिताया करता था—इधर आना-जाना बहुत ही घट गया है--तो क्या इसी से वे नाराज़ हो गये हैं?—नहीं, वे इस प्रकृति के मनुष्य नहीं। ज़रूर कोई और कारण है। कह गये हैं, एक ख़ास बात है। कौन बात? तो क्या तेजकुँवरि के और मेरे सम्बन्ध की कोई मिथ्या ख़बर सुरेश बाबू के कान तक पहुँची है? मन ही मन बलदेव इस प्रकार की उधेड़बुन करने लगा; क्योंकि शहर में जो गुपचुप घुस-फुस हो रही थी उसकी ख़बर बलदेव को थी।

तो क्या घुस-फुस होने के लिए कोई कारण नहीं है? डाकबँगले में जब तेजकुँवरि ठहरी हुई थी तब प्रायः सन्ध्या-समय बलदेव वहाँ जाकर चाय पिया करता था। एक बार रात को उसने वहीं शायद खाना भी खाया था। इसके पश्चात्, जब तेजकुँवरि ने किराये का मकान ले लिया तब, बीच-बीच में वहाँ जाकर बलदेव ने उसकी ख़बर भी ली है।

इधर लगातार तीन-चार दिन, चार-पाँच बजे के समय, वह अपने साथ टमटम में तेजकुँवरि को बिठाकर हवा खाने भी आया-गया है। सन्ध्या के बाद लौटकर तेजकुँवरि के मकान पर ही उतरता है, वहीं दो-एक प्याले चाय पीता और गप-शप करके रात के नव बजे अपने बँगले पर पहुँचता है। अतएव लोगों ने गप उड़ा दी है कि सिंह साहब लेडी डाकृर के साथ विवाह करेंगे।

आज कचहरी से लौटकर बलदेव ने टमटम जोतने की आज्ञा नहीं दी। जल-पान आदि करके छः बजे के लगभग वह सुरेश बाबू के बँगले की ओर चला।

पहुँचकर देखा—बँगले के सामने खुली जगह में कुर्सी टेबिल आदि लगाये सुरेश बाबू बैठे हैं। सरकारी डाक्टर बाबू और मुसल्मान सब-रजिस्ट्रार साहब भी उपस्थित हैं। एक नौकर बड़ा-सा पंखा लिये सब को हवा कर रहा है।

बलदेव को देखकर सब-रजिस्ट्रार ने कहा—"सिंह साहब का आज तो यहाँ बहुत दिन में दर्शन हुआ!"—यह कहकर, डाकृर बाबू की ओर देख उसने गुप्त रूप से हास्य किया। बलदेव ने यह ताड़ लिया। रोष के मारे उसकी भौंहें तन गईं। यथासाध्य अपने को सँभालकर उत्तर दिया—जी हाँ, कई दिन से इधर आ नहीं सका।

सबके लिए चाय का एक-एक प्याला आया। चाय पीकर डाकृर बाबू और सब-रजिस्ट्रार विदा हुए।

अब अँधेरा हो रहा था। सुरेश बाबू ने पङ्खा झलने-वाले नौकर से कहा—"रहने दो, अब पङ्खे की ज़रूरत नहीं।" वह पङ्खा लेकर चला गया।

वहाँ और किसी के न रहने पर सुरेश बाबू ने कहा—क्यों जी बलदेव, यह क्या सुना जाता है?

"ऐसा क्या सुना है?"

"तुम विवाह करोगे?"

बलदेव हँसकर बोला—यदि करूँ तो मेरी उम्र क्या अभी अधिक हो गई है? जो लोग मुझसे उम्र में कहीं बड़े हैं वे तो विवाह करते रहते हैं।

सुरेश बाबू—नहीं, मैं यह नहीं कहता कि विवाह करने योग्य तुम्हारी अवस्था बीत गई। तब—जो विवाह करना ही हो तो—

बलदेव—यदि विवाह करना ही हो—तो इसी समय कर डालना ही अच्छा नहीं? धीरे-धीरे उमर तो और अधिक हो जायगी!

सुरेश बाबू तनिक ठहरकर बोले—नहीं, हँसी की बात नहीं है। बताओ तो सही, असल मामला क्या है!

"कैसा मामला?"

"ख़बर उड़ी है कि इस लेडी-डाकृर के साथ तुम्हारा विवाह होगा। इसकी असलियत क्या है?"

"निरी ग़प है। जिन्होंने ग़प उड़ाई है उनकी कल्पना-शक्ति की तारीफ़ करनी होगी।"

"यह उड़ती हुई ख़बर सच तो नहीं है?"

"बिलकुल झूठ है। क्यों? आपने क्या सच समझ लिया था?"

"मुझे तो यही आशङ्का हुई थी। जो हो, मेरे मन से अब एक चिन्ता का बोझ घट गया कि यह बात सच नहीं है। किन्तु तुमसे एक बात पूछता हूँ। बुरा न मान बैठना।"

"पूछिए।"

"तुम इस औरतिश्रा के साथ इतना हेल-मेल क्यों बढ़ाते हो?"

कुछ खिझलाहट के साथ बलदेव बोला—आप किसकी बात कहते हैं? आपका मतलब क्या मिस सोंधी से है?

औरतिया कह देने से बलदेव की यह गर्मी देख, सुरेश बाबू मन ही मन हँसे। उन्होंने कहा—हाँ जी। और किसकी बात कहूँगा। तुम उसे टमटम पर बिठाकर घुमाने ले जाते हो न—शाम को उसके घर जमकर चाय पीते हो—ये क्या अच्छी बातें हैं? तुम्हारी उम्र थोड़ी है, वह भी कमसिन है—घर में कोई अभिभावक नहीं—दोनों के बीच इतनी घनिष्ठता क्या आपत्ति-विहीन है?

सुनकर बलदेव खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने कहा—सुरेश बाबू, आप तो इस समय बिलकुल पुराने ढर्रे के जान पड़ते हैं। क्या पुरुष-पुरुष के बीच मित्रता नहीं होती? घनिष्ठता नहीं होती? इसमें यदि कोई दोष नहीं है तो

फिर मिस सोंधी के साथ मेरी दोस्ती—घनिष्ठता—में ही क्या दोष है ?

सुरेश बाबू गम्भीर होकर बोले—हो सकता है कि भीतर कोई दोष न हो—किन्तु देखने में तो ख़राब लगता है ।

"देखने में ख़राब तब हो सकता था जो मिस सोंधी कोई असूर्यम्पश्या (पर्दानशीन) स्त्री होती । सो तो है नहीं—वे हैं शिक्षिता स्वाधीना—ख़राब क्यों दीखेगा ? ये जो साहब लोग—"

सुरेश बाबू बीच में ही बोले—साहबों की बात छोड़ दो । न तो तुम्हीं साहब हो और न मिस सोंधी ही मेम हैं । भाई, इतनी गड़बड़ अच्छी नहीं । क्या जानें किसके मन में क्या हो !

बलदेव बोला—आपकी अन्तिम बात का ठीक मतलब मेरी समझ में नहीं आया । किसके मन में और क्या होगा ?

"तुम जानते हो कि तुम्हारी इस मिस सोंधी के मन में क्या है ? वे दुधमुँही बच्ची नहीं हैं—तुम्हारे साथ इतना हेल-मेल हो जाने से धीरे-धीरे उनकी बदनामी हो सकती है, वे क्या इस बात को नहीं समझतीं ? ख़ूब समझती हैं । यह समझ बूझकर भी जब बात यहाँ तक बढ़ गई है—तब उनके मन में अवश्य कोई न कोई गूढ़ अभिसन्धि है ।"

"कैसी अभिसन्धि ?"

"वे हैं अविवाहिता युवती—और तुम हो गृहशून्य युवक । दस रुपये की रोज़ी लगी है, विवाह के सिवा और ।

सन्धि हो सकती है? मेरा तो विश्वास है कि वे तुम्हें फाँसने की चेष्टा में हैं।"

बलदेव ने रुखाई के साथ कहा—आप लोगों को न जाने कैसा बुरा अभ्यास हो गया है। स्त्री-जाति मात्र पर आप अविश्वास करते हैं। मैं निःसन्देह कह सकता हूँ कि मिस सोंधी की वैसी कोई अभिसन्धि नहीं है। और आपने जो यह कहा कि तुम्हारे साथ ज़्यादा हिलने-मिलने से उनकी बदनामी हो सकती है, सो इसे वे ख़ूब जानती हैं—यहीं आप भूल करते हैं। किसी भले आदमी के साथ सामाजिक भाव से मिलने-जुलने पर कोई उसे बुरी नज़र से देखेगा—इसे वे स्वप्न में भी नहीं जानतीं।

सुरेश बाबू ने ज़रा चुप रहकर कहा—तुम अभी लड़के हो, इसी से यह कहते हो। जो मेरा परामर्श सुनो तो उसके साथ अब हेल-मेल न बढ़ाओ। किसी स्त्री के साथ पुरुष की मित्रता-फित्रता मेरी समझ में ठीक नहीं। चाणक्य पण्डित के उस श्लोक को जानते हो? 'घी और आग।' यह साहबी ढङ्ग छोड़ दो। इतने ही समय में तुम उसे इस प्रकार ऊँची निगाहों से देखने लगे हो कि उसका ज़रा-सा भी असम्मान तुम्हें सहन नहीं होता—इससे मुझे चिन्ता है कि कहीं तुम उसके प्रेम में न पड़ जाओ; कुछ गड़बड़ न कर बैठो। अभी जो सिर्फ़ अफ़वाह है—किसी दिन वह कहीं सत्य न हो जाय।

"यह आशङ्का न कीजिए। उससे मिलने पर तनिक दिल बहलाव होता है—इसी से मिलता हूँ। न तो प्रेम करूँगा और न उसके साथ विवाह। अच्छा, अब आज्ञा है न, रात हो गई।" यह कहकर बलदेव चलता हुआ।

४

कुछ तो अपनी प्रवृत्ति की झोंक में, और कुछ सुरेश बाबू से रूठकर उन्हें दिखाने के लिए बलदेव ने तेजकुँवरि के साथ पहले से भी अधिक हेल-मेल बढ़ाना आरम्भ कर दिया।

बलदेव दशहरे की छुट्टी से लौटकर तेजकुँवरि के आमन्त्रित करने पर, बीच-बीच में, उसी के घर ब्यालू करता है। खान-पान के पश्चात् गप-शप में कभी रात के दस और कभी ग्यारह तक बज जाते हैं।

फिर सिर्फ़ न्यौता खा लेने से ही काम नहीं सटता—बदले में उसका न्यौता भी करना पड़ता है। तेजकुँवरि को न्यौतकर बलदेव डाक-बँगले में भोजन करता है। भोजन हो चुकने पर बातचीत में बहुत रात हो जाया करती है—तेजकुँवरि अकेली घर नहीं जा सकती—बलदेव उसे पहुँचाने जाता है।

इस प्रकार एक महीना और बीता।

एक दिन दोपहर को बलदेव इजलास में बैठा एक मार-पीट के मुक़दमे के गवाहों के इज़हार लिख रहा था।

इसी समय, सब डिविज़नल आफ़िसर के यहाँ से चिट आई; उसमें अँगरेज़ी में लिखा है—"आज उस वक़्त हमारे बँगले पर अवश्य आइए, ज़रूरी काम है।" बलदेव ने उस पर उत्तर लिख दिया—"आऊँगा।" मन ही मन कहा—न जाने अब कौन-सी नई अफ़वाह सुनी है! जो आज फिर लम्बा लेक्चर देंगे तो मैं कठोर उत्तर सुना दूँगा।

कचहरी से छुट्टी पाकर बलदेव घर गया। वहाँ उसे तेजकुँवरि के यहाँ व्यालू करने का निमन्त्रण-पत्र मिला।

बलदेव ने यथासमय सुरेश बाबू के बँगले पर पहुँचकर देखा, आज वे अकेले दफ्तरवाले कमरे में बैठे चाय-पान कर रहे हैं। बलदेव को देखकर कहा—आओ, थोड़ी-सी चाय पी लो।

"नहीं।"—बलदेव की इच्छा है, चटपट यहाँ का काम करके तेजकुँवरि के घर चाय-पान करे।

सुरेश बाबू मन लगाकर चाय पी रहे हैं। बलदेव बार-बार घड़ी की ओर दृष्टि-पात कर रहा है। सुरेश बाबू ने कहा—कहीं जाना है? क्या बहुत जल्दी है?

बलदेव ने उनकी परवा न करने के ढंग से कहा—जी हाँ, मिस सोंधी के यहाँ न्यौता है।

चाय का प्याला ख़ाली करके, नौकर के हाथ से तौलिया लेकर मुँह पोंछते-पोंछते सुरेश बाबू ने कहा—देखो बलदेव, मैंने तुमसे उसी समय कह दिया था—तब तुमने मेरी बात न

मानी। तुम्हारे और मिस सोंधी के मामले की चर्चा साहब के कान तक पहुँच गई—साहब बिलकुल आग-बबूला हो गये हैं।

ऐसे अफ़सर लोग जब "साहब" शब्द का उच्चारण करते हैं तब उसका सम्बन्ध ज़िले के कलेक्टर से होता है।

बलदेव के मानसिक ताप-मान का पारा एकाएक कई डिगरी नीचे उतर आया। उसने कहा—साहब के कान तक पहुँच गई! कौन बात?

डिब्बे से पान के दो बीड़े निकालकर मुँह में रखते-रखते सुरेश बाबू ने "लो देखो न" कहकर आफ़िस-बाक्स से एक चिट्ठी निकालकर बलदेव को दे दी।

कलेक्टर साहब ने अपने हाथ से हुक्म लिखा है, "इस गुमनाम पत्र की जाँच करके सब डिविज़नल आफ़िसर अपनी राय भी लिखें—फिर हम स्वयं आकर बाक़ायदा जाँच करेंगे।" हुक्मनामे के साथ एक मामूली पर्चा नत्थी है। उसमें बिना जमे हाथ से लिखे गये बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है—

हजूर कलट्टर साब के खिजमित में,

हाल जो है कै इतै जौन नई मेम साब डाकधरिन आई हैं वे भौत बुरई हैं। उनको चालचलन नोंनो नइयां। इतै के हाकिम सींग साब के संगे बिरोबिरी करती हैं। डाकधरिन के चालचलन खों बस्ती बारे अच्छी तरा सें जान गये हैं। जासें इतै के भले आदमियन के घरों में उनकी पैठ नइयां। जाके लानें अपनौ इतै आबो होवै और जांच करबे में आवै। और मेम साब खों इतै से बदल दवो जावे।

चिट्ठी पढ़ने पर क्रोध से बलदेव का मुँह और कान लाल हो गये। चिट्ठी को ज़ोर से टेबिल पर पटककर कहा—झूठ—बिलकुल झूठ!

सुरेश बाबू शान्त भाव से उसके मुँह की ओर एकटक देखते रह गये। कुछ देर में बोले—इस चिट्ठी को पाकर मैंने भी कुछ जाँच की है।

बलदेव ने विकृत स्वर में कहा—जाँच से क्या मालूम हुआ?

"मुझे और नई बात क्या मालूम होगी? सारा शहर जिस बात को जानता है वही मुझे मालूम हुआ है।"

"वह क्या?"

"यही कि तुम प्रायः बहुत रात तक लेडी-डाक्टर के घर में रहते हो। कई दिन, बड़ी रात तक, दोनों डाक-बँगले में भी एक साथ थे।"

"इससे क्या सिद्ध हुआ?"

सुरेश बाबू ने नीची निगाह करके विरक्ति के स्वर में कहा—जो सिद्ध हुआ उसे तुम आप समझ सकते हो। तुम बिलकुल बच्चे तो हो नहीं।

दोनों हाथों पर मस्तक टेककर बलदेव सोचने लगा।

सुरेश बाबू ने हलकी मलामत के स्वर में कहा—सिर्फ़ अपनी ज़िद के पीछे तुमने यह धब्बा लगा लिया। समय पर जो सावधान हो जाते तो यह नौबत न आती। उस

समय कहा था सो तुम सुनते ही चिढ़ गये थे। अब किस तरह सँभालोगे, सँभालो।

बलदेव ने सिर उठाया। कहा—आप विश्वास करते हैं न कि मैं निर्दोषी हूँ?

फिर कहा—हाँ, कुछ अविवेचना ज़रूर हुई है। साहब यहाँ आवेंगे और तहक़ीक़ात करेंगे। उस समय ये सब बातें खुलेंगी तब वे क्या करेंगे?

"मैं समझता हूँ, लेडी-डाक्टर को बर्ख़ास्त करेंगे—अथवा तुम्हें यहाँ से बदल देंगे। यह तो निश्चय है कि दोनों को एक जगह न रहने देंगे।"

"किन्तु मिस सोंधी सर्वथा निर्दोष हैं। जो दोष हुआ है—आपने जो कहा कि अविवेचना का दोष—वह मेरा है। मेरे अपराध में उस ग़रीबिनी की रोज़ी जायगी। इससे तो मेरा तबादला हो जाना ही भला।"

सुरेश बाबू ने कहा—कहने से तुम नाराज़ हो जाते हो—फिर भी मैं कहता हूँ—तुम उसे जितनी अबला, सरला समझते हो उतनी वह असल में है नहीं। जो उसे कुछ भी आत्म-सम्मान का ज्ञान होता तो वह कभी तुम्हारे साथ इस बढ़ी हुई रसाई को रहने न देती। रहने दिया है—खूब समझ-बूझकर—सिर्फ़ तुम्हें फाँसने के लिए।

बलदेव ने सिर हिलाकर कहा—नहीं सुरेश बाबू—यह आपकी भूल है। उसके मन में रत्ती भर भी पाप नहीं

है। वह हमारे साथ जो इतना हेल-मेल करती है—वह सिर्फ़ निर्दोष आमोद के लिए। और यह बात तो उसकी कल्पना में भी नहीं आती कि हमारे आचरण से और लोग कुछ और भी समझ सकते हैं।

सुरेश बाबू ने सन्दिग्ध भाव से सिर हिलाकर कहा—मैंने सुना है, अँगरेज़ों में भी अनात्मीय युवक-युवती के हेल-मेल के सम्बन्ध में कड़ा नियम है। इस प्रकार का हेल-मेल वही करते हैं जिनका आजकल में विवाह होने को होता है। मिस सोंधी को क्या इसका स्मरण नहीं है?

बलदेव—आपने जो सुना है वह ठीक नहीं है। अँगरेज़ लोगों के बीच इस विषय में यथेष्ट स्वाधीनता है। देखिएगा, कलेकृर साहब आकर जब जाँच के अन्त में प्रकृत घटना को अवगत करेंगे तब हमको विशेष दोषी न समझेंगे।

सुरेश बाबू ज़रा अविश्वास की हँसी हँसने लगे। फिर बोले—जो हो, इस अवस्था में दोनों को एक जगह नहीं रहने दिया जाता—मैं इस बात के दो-एक दृष्टान्त जानता हूँ।

जाने के लिए बलदेव खड़ा हो गया। उसके साथ-साथ सुरेश बाबू फाटक तक आये। जाते समय बलदेव ने कहा—अच्छा, एक काम किया जाय तो कैसा?

"क्या?"

"जो मैं बदली कराने के लिए कल ही दरख़्वास्त भेज दूँ—तब तो यह मामला दब जायगा न?"

"दब सकता है। तो क्या यही करोगे?—अपमान के साथ बदली होने की अपेक्षा स्वयं दरख़्वास्त देकर बदली करा लेना सौ गुना भला है।"

"अच्छा मैं सोच लूँ। जैसा होगा, कल आकर आप को बताऊँगा।"—कहकर बलदेव ने जाने की अनुमति माँगी।

सुरेश बाबू ने हँसते-हँसते कहा—सब से बढ़कर तो तब दब जाय—जो तुम मिस सोंधी को ब्याह लो।

"यह असम्भव है।"

"भगवान् तुम्हारी इस सुमति को सदा स्थिर रक्खें" कहकर सुरेश बाबू ने बलदेव का कर-मर्दन किया।

५

तेजकुँवरि का घर अस्पताल से बहुत दूर नहीं। फाटक पार होकर एक साधारण फुलवाड़ी है। फुलवाड़ी को लाँघकर बरामदा-युक्त एक बाहर का कमरा है। इस कमरे में एक ओर भीतर प्रवेश करने के लिए दरवाज़ा है।

बाहरवाला कमरा ख़ूब सजा हुआ है। दशहरे की छुट्टी में बलदेव कानपुर से यह सब सामान और तसवीरें आदि ख़रीद लाया है। तेजकुँवरि बीच-बीच में कहा करती है—"हमें बिल न दिया?"—बलदेव कह देता है—"ढूँढूँगा।"—किन्तु वह बिल न जाने कहाँ चला गया है, खोजने पर भी किसी तरह नहीं मिलता।

तेजकुँवरि आज आसमानी रङ्ग की रेशमी साड़ी और काले रङ्ग की जाकेट पहने है। ये दोनों चीज़ें भी बलदेव से ही भेट में मिली हैं। साड़ी का छोर सोने के एक ब्रोच से आबद्ध है। ब्रोच में अङ्कित है "याद रखना।" यह ब्रोच बलदेव ने नहीं दिया—तेजकुँवरि लाहोर से लाई है।

टेबिल के पास बैठकर कुञ्चित रेशम के शेड से युक्त एक फ़ैशनेबुल लेम्प के उजेले में तेजकुँवरि हिन्दी का जासूसी उपन्यास पढ़ रही थी।

बलदेव के प्रवेश करते ही उसने कुर्सी छोड़कर कहा—आइए! आज इतनी देरी? मैं सोचती थी कि शायद भूल ही गये।

और दिन होता तो भूल जाने की असम्भवता दिखाने को बलदेव कुछ उत्तर देता और तेजकुँवरि को इसकी आशा थी भी, किन्तु आज उसके मुँह से वह बात न निकली।

उसे निरुत्तर देखकर तेजकुँवरि ने पूछा—अब तक कहाँ रहे?

"सुरेश बाबू के यहाँ"—कहकर बलदेव बैठ गया।

आज दोनों के बीच गप-शप का रङ्ग अच्छा न जमा। तेजकुँवरि ने उससे बातें कराने की बहुत-बहुत चेष्टा की, किन्तु एक अक्षरवाले उत्तर के अतिरिक्त और कुछ बाहर न निकाल सकी। बलदेव का चेहरा आज गम्भीर है—उस पर चिन्ता की झलक है।

अन्त में तेजकुँवरि बोली—बतलाइए तो, आज आपको क्या हुआ है?

"होगा क्या?"

तेजकुवरि ने ज़रा ध्यान से बलदेव के चेहरे को जाँचा। अन्त में कहा—ज़रा नब्ज़ तो दिखाइए।

बलदेव ने हाथ बढ़ा दिया।

तेजकुँवरि ने उसकी नब्ज़ देखकर कहा—लिवर बिगड़ गया है।

बलदेव—नहीं यह कुछ नहीं हुआ।

तेजकुँवरि—यदि नहीं बिगड़ा है तो फिर आपका चेहरा आज इतना फीका क्यों है?

बलदेव ने उत्तर नहीं दिया—वह दूसरी ओर ताकने लगा।

तेजकुँवरि ने तनिक अपेक्षा करके कहा—बतलाइए न।

बलदेव ने मानों चौंककर कहा—क्या?

"आपका मन आज कहाँ है?"

"मन?"

"जी हाँ।"

किसी और समय पर बलदेव ने ऐसे प्रश्न का उत्तर दिया था—"चोरी गया है।" किन्तु आज रसिकता की चेष्टा तक नहीं की; पूछा—क्या आपने कुछ कहा था?

"मैंने पूछा था—आज आप इतने दुचित्ते क्यों हैं? घर से कोई गड़बड़ ख़बर तो नहीं आई?"

"नहीं।—खाना तैयार हो गया?"

"हाँ, तैयार हो गया होगा—देख आऊँ।"—कहकर तेजकुँवरि भीतर गई। रसोईघर के दरवाज़े पर जाकर उसने पूछा,—सुन्दर, अब कितनी देर है?

"कुछ भी नहीं—थोड़े-से काटलेट भूनने को हैं।"

तेजकुँवरि ने धीमी आवाज़ में कहा—सुन्दर, सुन—इधर आ।

हाथ में पलटा लिये सुन्दर मुँह उठाये दरवाज़े के पास आकर खड़ी हो गई। दोनों बहुत ही धीरे-धीरे न जाने क्या बातचीत करने लगीं। सुन्दर मुसकुरा-मुसकुरा कर 'हाँ' कहने और सिर मटकाने लगी। अन्त में तेजकुँवरि ने कहा—देख सुन्दर, पोर्ट की उस बोतल में कुछ है?

"है। अभी आधी बोतल है।"

"खाना चुनकर, टेबिल पर वह बोतल रख देना। उससे कह दिया है, तुम्हारा लिवर बिगड़ गया है। दवा का नाम लेकर, कुछ न कुछ मिलाकर, थोड़ी-सी पोर्ट पिला दूँगी। चाहे जिस तरह हो, आज फ़ैसला करा लेना है।"

"अच्छा, रख दूँगी। किन्तु सावधान रहना, कहीं हाथ से बाहर न होजाय—जैसा श्यामलाल हो गया था।"

"जा जा, तुझे और उपदेश न देना होगा।"—कहकर तेजकुँवरि बाहर आ गई। देखा तो बलदेव कमरे में नहीं—बाहर बरामदे में खड़ा है। दूर—पीपल के पेड़ की फुनँग पर चन्द्रोदय हो रहा है।

समीप आकर तेजकुँवरि बोली—आइए—भीतर आइए, यहाँ क्यों खड़े हैं ?

बलदेव—कमरे में बड़ी गरमी है इसी से ज़रा हवा में खड़ा हो गया हूँ। क्या खाना अभी तैयार नहीं हुआ ?

"तैयार ही समझिए, बहुत विलम्ब नहीं। पन्द्रह मिनिट में तैयार हुआ जाता है। आइए, तब तक यहीं बैठिए। अच्छा कुर्सी ले आऊँ ?"

"आप कष्ट न करें, मैं लिये आता हूँ।"—कहकर बलदेव दोनों हाथों से दो कुर्सियाँ उठा लाया।

बैठकर तेजकुँवरि ने कहा—अवश्य ही आपका लिवर ख़राब हो गया है। कई दिन से देख रही हूँ, आपकी आँखें पीली-पीली हो गई हैं। आज मैं आपको एक दवा पिला दूँगी।

"नहीं, मुझे कुछ नहीं हुआ।"

अभिमान के स्वर में तेजकुँवरि बोली—मैं डाकृरिन हूँ, मैं कहती हूँ—आपको विश्वास नहीं होता ?

"अच्छा—मैं दवा खा लूँगा—मुझे इन्कार नहीं। किन्तु मुझे कोई शारीरिक रोग नहीं है।"

"तो क्या मानसिक रोग है ?"

बलदेव चुप हो रहा। खानसामा ने आकर ख़बर दी, खाना तैयार है।

❀ ❀ ❀ ❀

❀ ❀ ❀ ❀

खा-पी चुकने पर दोनों फिर बरामदे में आ बैठे। चन्द्र ने और भी ऊंचे उठकर बरामदे को चाँदनी से भर दिया।

बलदेव 'ओषधि' पी चुका है। ओषधि अच्छी लगी—ज़रा ज्यादा ही पी गया है। नहीं कह सकते कि लिवर के ऊपर उसका कहाँ तक असर पड़ा—हाँ, मस्तिष्क के भीतर मानो प्रफुल्ल चन्द्र-किरणें चम-चम कर रही हैं।

शारीरिक अस्वस्थता नहीं है तो मानसिक अस्वस्थता क्या है? इसको जानने के लिए तेजकुँवरि हठ करने लगी। अन्त में उसने स्निग्ध कण्ठ से कहा—हाँ, अपने मन की बात आप मुझे क्यों बताने लगे? भला मैं आपकी हूँ कौन?

बलदेव ने जोश में आकर तेजकुँवरि का हाथ पकड़कर कहा—आप क्या मेरी कोई नहीं हैं?

पूर्ववत् अभिमान के सुर में तेजकुँवरि बोली—जो कोई होती तो फिर क्या आप बिना बताये रह सकते?

"मैं इसलिए नहीं बतलाता कि सुनकर पीछे से कहीं आपको खेद न हो।"

"आप जो कष्ट पा रहे हैं—उसी से क्या मेरे मन में कम कष्ट होता है? सुनने से इसकी अपेक्षा मुझे और अधिक कष्ट क्या होगा? मैं क्या आपके सुख की ही भागी हूँ? दुःख की नहीं?"

वायु के झोंके से बरामदे के नीचे रजनीगन्धा के पेड़ हिलने लगे—फूलों की मृदु सुगन्धि से बरामदा भर गया। बलदेव ने कहा—आपके आगे उस बात को कहना अच्छा नहीं।

तेजकुँवरि ने नीचे मुँह किये-किये कहा—मुझे यदि आप अपनी समझते तो फिर वह बात ख़राब न होती।

"तो आप सुनेंगी ही ?"

"ज़रूर।"

तब बलदेव ने सङ्कोच के साथ, धीरे-धीरे, उसी गुमनाम चिट्ठी की बात प्रकट की। जो कुछ कलेक्टर साहब ने लिखा था वह भी कह दिया।

सुनकर तेजकुँवरि पहले तो अकड़ी बैठी रही। इसके पश्चात् माथा झुकाकर उसने दोनों हाथों से मुँह छिपा लिया। अब वह कँपा-कँपाकर रोने की भाँति एक प्रकार का शब्द करने लगी।

"यह क्या! मिस सोंधी, आप रो रही हैं ?"—यह कहकर बलदेव ने तेजकुँवरि के हाथ पकड़ लिये। फिर प्यार के स्वर में कहा—मुँह उठाओ, मेरी ओर देखो—छि: कोई रोता है!

तेजकुँवरि ने मुँह तो ऊपर नहीं किया—पर उसके रोने का स्वर बढ़ने लगा।

"मेरी बात सुनिए—ऐसा न कीजिए—शान्त हो जाइए। लिख दिया—तो लिखने से ही क्या हो गया ?"—कहकर तेजकुँवरि के मुँह को हाथों से अलग कर लिया। बलदेव अपने रूमाल से उसके शुष्क नेत्रों को पोंछने लगा।

"क्या हुआ है ? अब बाक़ी ही क्या रहा ? मेरा तो सत्यानाश हो गया!"—कहकर तेजकुँवरि ने दोनों हाथों से मुँह छिपा लिया।

बलदेव ने कहा—अभी से इतना घबराने की आवश्यकता क्या है? देखना चाहिए, कलेक्टर साहब आकर क्या करते हैं।

अब तेजकुँवरि ने मुँह पर से हाथ हटाकर कहा—ज्योंही वे आकर जाँच करेंगे त्योंही सब प्रकट हो जायगा। हम दोनों टमटम पर सवार होकर लगातार छः महीने से घूमते रहे हैं—रात के दस-दस ग्यारह-ग्यारह बजे तक प्रायः दोनों एकत्र रहे हैं—उन्हें ये सब बातें मालूम हो जायँगी।

बलदेव ने कहा—टमटम पर सवार होकर हवा खाई है—एक साथ डिनर खाया है, रात को बैठकर बातचीत की है—इसमें ऐसा दोष ही क्या है? नादान हिन्दुस्तानी हमें दोषी समझ सकते हैं—किन्तु वे अँगरेज़ हैं—वे कभी ऐसा न समझेंगे।

तेजकुँवरि ने उत्तेजित स्वर में कहा—आप कहते क्या हैं! वे हमें दोषी न मानेंगे? इस तरह एक साथ कौन घूमते-फिरते और खाते-पीते हैं?—जिनका कि दो-एक दिन में विवाह होने को होता है।

बलदेव चौंक उठा। जो सुरेश बाबू ने कहा था वही बात यह भी कहती है! तो क्या मेरी (बलदेव की) ही भूल है।

बलदेव नीची निगाह किये बैठा-बैठा सोचने लगा। तेज-कुँवरि ने भर्राई हुई आवाज़ में कहना आरम्भ किया—"हाय—अन्त में मेरी तक़दीर में यह कलङ्क बदा था! मैं जब उपजी थी

तभी मेरी माँ ने क्यों न मेरा गला घोंट दिया! मेरे जीवन को धिक्कार है। मुझे जीवित रहने में क्या सुख है? इस कलङ्क के बोझ को मैं सह न सकूँगी—मैं आज रात को ही आर्सेनिक खा लूँगी।"—अब वह रूमाल से आँखें छिपाकर सिसक-सिसककर रोने लगी।

तेजकुँवरि की दशा देखकर बलदेव भी रोने लगा। अब वह भली भाँति समझ गया है—यह घटना बिलकुल उसी के दोष का फल है। वह बोला—मिस सोंधी—आपका रोना देखकर मेरा कलेजा फटा जाता है। जो होना था सो तो हो ही गया। अब बतलाओ, क्या करना चाहिए जिससे काम बन जाय। सुरेश बाबू ने कहा था, यदि मैं स्वयं दरख़्वास्त देकर यहाँ से तबादला करा लूँ—तब तो जान पड़ता है, कलेक्टर साहब जाँच करने की आवश्यकता न समझेंगे। इससे मैं—कल ही बदली कराने के लिए दरख़्वास्त देना मुनासिब समझता हूँ।

तेजकुँवरि मुँह उठाकर कई मिनिट तक बलदेव की ओर देखती रही। फिर मुँह में रूमाल लगाकर कहने लगी—निष्ठुर!—निर्दय! मैं न जानती थी कि आप इतने निठुर हैं।

बलदेव को तनिक विस्मय हुआ। वह बोला—आप यह बात क्यों कह रही हैं?

तेजकुँवरि ने एकाएक बलदेव की छाती में मुँह छिपाकर कहा—निष्ठुर!—आप चले जायँगे? मुझे छोड़कर चले

जायँगे ? जाने से पहले मेरे गले पर छुरी फेर जाइए। अधमरी रहने से तो एकदम मर जाना ही अच्छा।

यह बात सुनकर बलदेव मानो आकाश से गिरा। अरे सब चौपट हो गया!—ऐसा मामला ? छिपे-छिपे यहाँ तक बात आ पहुँची है! इस बात का ख़याल तो उसने किसी दिन स्वप्न में भी नहीं किया!

लहमे भर में बलदेव ने अपना कर्तव्य स्थिर कर लिया। तेजकुँवरि के साथ वह व्याह करेगा। सिवा इसके और उपाय नहीं है—न करे तो घोर अधर्म होगा।

बलदेव ने आदर करके तेजकुँवरि का मुँह उठाकर कहा—तेजकुँवरि—रोओ मत, चुप हो जाओ। जो यही तुम्हारे दुःख का कारण हो—तो उसका उपाय तो बहुत ही सहज है।

तेजकुँवरि—तुम कौन-सा उपाय करोगे ? इस कलङ्क से तुम हमें बचा सकोगे ?

"हाँ तेजकुँवरि—ज़रूर बचाऊँगा। मैं तुम्हारे साथ विवाह कर लूँगा—यदि तुम सम्मति दो।—तब तो फिर कलेक्टर साहब की जाँच रुक जायगी। कुछ भी गड़बड़ न होगी।"

यह बात सुनकर तेजकुँवरि फिर बलदेव के सीने में मुँह छिपाकर रोने लगी। बलदेव ने पूछा—अब फिर किसलिए रोती हो ?

अश्रु-विगलित स्वर से तेजकुँवरि ने कहा—तुम जो हमें ब्याह लेने की बात कहते हो, सो क्या तुम हमें प्यार करते हो?

"खूब!"

सिर मटकाकर तेजकुँवरि बोली—नहीं, तुम प्यार नहीं करते।

"दिलोजान से चाहता हूँ।"

तेजकुँवरि ने ओठ फुलाकर कहा—जो दिल से चाहते हो तो फिर क्यों कहा था कि बदली करवाकर यहाँ से चले जावेंगे।

बलदेव सहसा कोई उत्तर न ढूँढ़ सका। उसने सोच-कर कहा—मैं यह कब जानता था कि तुम मुझे चाहती हो।

तेजकुँवरि बोली—मैंने तो तुम्हें पहले-पहल जिस दिन देखा है उसी दिन से प्यार किया है।

परामर्श हुआ, बलदेव कल ही एक दिन की छुट्टी के लिए कलेक्टर को दरख़ास्त भेजेगा। छुट्टी मिलते ही ज़िले में जाकर सिविल विवाह के रजिस्ट्रार को एक्ट नं० ३ के अनुसार नोटिस दे आवेगा। नोटिस देने पर दो सप्ताह पश्चात्, तीन महीने के भीतर, विवाह हो सकता है।

कल उस वक्त टमटम समेत आने का वचन देकर बलदेव विदा हुआ।

घर में तेजकुँवरि के पहुँचते ही सुन्दर हँसी के मारे लोट-पोट हो गई। उसने कहा—धन्य है तुम्हें—अच्छा एक्ट किया! बिलकुल पहले दरजे का!

तेजकुँवरि—तो क्या तूने सुन लिया?

"सुना नहीं तो क्या? बैठक में दरवाज़े की ओट में खड़ी होकर मैंने एक-एक बात सुनी है। बापरे—बड़ी-बड़ी मुशकिलों से मैं हँसी को रोक सकी। ख़ासकर जब तुम गला कँपा-कँपाकर बोलने लगीं—निष्ठुर!—निष्ठुर!—तब ज़रा और होता तो मैं हँसी को न रोक सकती! बढ़िया एक्ट किया। जो तुम डाक्टरी न करके थियेटर में नौकरी करतीं तो आज दिन तुम्हारी बेहद आमदनी बढ़ जाती।"

"झूठ नहीं है। ओह—बहुत थक गई हूँ। पोर्ट की बोतल तो लाओ सुन्दर"—कहकर कपड़े बदलने के लिए तेजकुँवरि सोने के कमरे में गई।

६

बँगले में पहुँचकर बलदेव ने घड़ी देखी तो बारह बज चुके हैं। इतनी रात बीत गई जानकर वह ज़रा चौंका। वह समझता था कि अभी ग्यारह नहीं बजे।

कपड़े आदि उतारकर देखा कि टेबिल पर एक पत्र रक्खा है। उसकी माँ के हस्ताक्षर हैं। बिस्तरे पर बैठकर लिफ़ाफ़ा खोला। वह पत्र पढ़ने लगा। दुबारा विवाह करने के लिए बहुत आग्रह करके माँ ने पत्र लिखा है। एक सुन्दरी कन्या को उन्होंने पसन्द कर लिया है। उनका विशेष अनुरोध है कि चिट्ठी पाते ही बलदेव एक महीने की

छुट्टी के लिए दरख़्वास्त भेज दे। और, घर आकर अगहन में ही यह शुभ-कार्य हो जाने दे।

पत्र पढ़कर बलदेव मन ही मन तनिक हँसा। बोला—आज चारों ओर से विवाह के ही समाचार हैं। माँ, मैं विवाह करूँगा—किन्तु तुमने जिस कुमारी को चुना है उसके साथ नहीं। वह तुलसी-पीपल पूजनेवाली, वामा-बोधिनी पढ़ी हुई, घूँघट में मुखड़ा छिपाये रहनेवाली और महावर से पैर रँगानेवाली दुलहिन मुझे नहीं भाती। मुझे तो एक ऐसी दुलहिन चाहिए जो अँगरेज़ी में बातचीत करे, जूता पहने खट-पट करती हुई घूमे, टेबिल-कुर्सी पर खाना खावे और पियानो बजाकर गाना गावे।

बत्ती बुताकर बिछौने पर लेटे-लेटे तेजकुँवरि के चेहरे का ध्यान करते-करते बलदेव शीघ्र ही सो गया।

दूसरे दिन सबेरे जब उसकी नींद टूटी तब ख़ासी धूप निकल चुकी थी। घड़ी की ओर देखा, सात के लगभग हैं। तथापि बिछौना छोड़ने की उसे कुछ जल्दी नहीं। वह बिस्तरे पर चुप-चाप लेटा हुआ पिछली रात की घटना-परम्परा को सोचने लगा।

सोचते-सोचते उसके मन में बड़ी अशान्ति उपस्थित हुई। सोचा—यह क्या कर बैठा! जिसकी किसी दिन कल्पना भी नहीं की वही तो कर डाला! क्या यह काम अच्छा हुआ?

"जिसके साथ विवाह करने को उद्यत हुआ हूँ उसके सम्बन्ध में तो मैं कुछ जानता ही नहीं। सिर्फ़ इतना ही

जानता हूँ कि उसने मेडिकल स्कूल में पढ़कर डाक्टरी पास की है। मालूम नहीं, उसका बाप कौन है—उसकी माता को भी नहीं जानता—यह भी नहीं मालूम कि वंश कैसा है—कैसी अवस्था में रहकर वह सयानी हुई है, यह भी बिलकुल अज्ञात है;—एकाएक प्रतिज्ञा कर बैठा कि विवाह करूँगा!—यह तो अँधेरे में कूद पड़ने का-सा काम है। काम अच्छा नहीं हुआ।

"इसके साथ विवाह कर लेने से, परिणाम कुछ भी हो, अभी तो फ़ौरन् जाति से ख़ारिज़ होना होगा। मुर्ग़ा खाता हूँ और चाहे जो करता हूँ—तब भी मैं हिन्दू-समाज के भीतर हूँ! विवाह करते ही मेरी माता—मेरे भाई-बहन—मेरे आत्मीय स्वजन—सभी अलग हो जायँगे। मैं यह कर क्या बैठा!

"किन्तु अब इन बातों पर सोच-विचार करने से क्या होगा? जब प्रतिज्ञा करने को तैयार हुआ था तभी—नहीं, उससे भी पहले—ये बातें सोच लेनी थीं। एक अपरिचित युवती के साथ क्यों इतना हेल-मेल किया—इतनी घनिष्ठता की! जो यहाँ तक न बढ़ने देता तो यह घटना न होती। कर्म-सूत्र के इस जाल को अपने हाथों फैलाकर, स्वयं अपने आपको क्यों फँसा लिया?

"किन्तु जब वचन दिया है तब—अब मुकरने के लिए जगह नहीं। मुकर जाना, धर्म की दृष्टि से उचित भी न होगा। मूढ़ता के वश में होकर उस सरला रमणी के मन

में प्रणय-सञ्चार किया है। बूढ़े चाणक्य पण्डित ने ठीक ही लिखा था। घी पिघल गया है। अब जो पीछे पग हटाता हूँ—विवाह नहीं करता हूँ—तो वह विश्वस्त हृदय खण्डित हो जावेगा। केवल यही नहीं—मृत्यु से भी अधिक कलङ्क उसके चिरजीवन का साथी होगा। अतएव, अब और कुछ सोचना निष्फल है।"

गहरी ठण्ढी साँस लेकर बलदेव ने बिस्तर छोड़ा। मुँह आदि धोकर, छोटी हाज़िरी खाते-खाते उसको याद आई—बदली की दरख़्वास्त देने के सम्बन्ध में आज सुरेश बाबू को अपने निश्चय की सूचना देनी है। सोचा—जाऊँ, एक दिन की छुट्टी के लिए दरख़्वास्त दे आऊँ—और सब बातें भी उनसे कह आऊँ।

बलदेव ने उनके बँगले पर जाकर देखा कि सुरेश बाबू अपने कमरे में बैठे एक मुक़दमे का फ़ैसला लिख रहे हैं। कहा—आओ बलदेव। आज तो दरख़्वास्त लिख लाये हो।

बलदेव ने बैठकर सुरेश बाबू के हाथ में काग़ज़ दे दिया। उन्होंने पढ़कर कहा—यह क्या? एक दिन की छुट्टी लेकर क्या करोगे?

बलदेव ने म्लान मुख करके कहा—सुरेश बाबू, मेरा सब काम उलट-पलट गया। मैं मिस सोंधी के साथ विवाह करूँगा। ज़िले में जाकर रजिस्ट्रार को एक्ट नं० ३ के अनुसार नोटिस दूँगा।

सुरेश बाबू आँखें फाड़कर बलदेव की ओर देखते रह गये। अन्त में बोले—अभी कल ही. शाम को, कहते थे—उससे विवाह करने की कल्पना भी नहीं कर सकते—इसी बीच फिर राय पलट जाने का क्या कारण है?

तब, बलदेव ने गत रात्रि की घटना का संक्षिप्त वर्णन कर दिया।

आदि से अन्त तक सुनकर सुरेश बाबू ने कहा—तुम्हारे ऐसा भोला आदमी मिल गया है!—कितनी पोर्ट पिला दी थी?

इस बात से बलदेव ज़रा उदास हुआ। उसने कहा—तो क्या पोर्ट पी करके ही मैंने वह काम किया है? मामला तो सब सुन ही चुके—जो अब मैं उसके साथ विवाह कराना अस्वीकार करूँ तो क्या यह मेरे पक्ष में घोर अन्याय नहीं है?

सुरेश बाबू ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—नहीं, अन्याय नहीं है। यदि पाश्चात्य विवाह-नीति के अनुसार ही विचार किया जाय तो उसके साथ तुम्हारा व्याह कर लेना ही अन्याय होगा।

"क्यों?"

"क्योंकि तुम उसे चाहते नहीं हो।"

"यह आपने कैसे जान लिया कि मैं उसको प्यार नहीं करता?"

"जो उस पर तुम्हारी मुहब्बत होती तो इससे बहुत पहले उसके साथ विवाह कर लेने की इच्छा तुम्हें होती। इस

बदनामी की प्रतीक्षा के लिए ठहरे न रहते। कल शाम को जब यहाँ से गये हो, तब तक उसे व्याह लेना तुम्हारे पक्ष में असम्भव था— फिर दो ही घण्टे में, चार औंस पोर्ट और कुछ आँसुओं के प्रभाव से ही तुम्हारा हृदय-क्षेत्र उर्वर हो गया और उसमें प्रेम-तरु उग आया !"

बलदेव निरुत्तर होकर बैठा रहा।

सुरेश बाबू बोले—जब तुम छोटे थे तभी से मैं तुम्हें देखता आता हूँ। तुम्हारे पिता का मेरे ऊपर विशेष स्नेह रहता था। इसी अधिकार से मैं ये बातें तुमसे कह रहा हूँ। बलदेव, तुम अपने मन में और कुछ न समझ लेना। तुम अभी लड़के हो—अभी तुम्हारी बुद्धि कच्ची है। मेरा परामर्श सुनो।"

"कहिए।"

"हो सकता है कि मिस सोंधी बड़ी भलीमानस है, किन्तु तुम उसे कितना जानते हो ? वह जो और तरह की हो तो कोई आश्चर्य नहीं। नाराज़ न होना—मुझे तो सन्देह है कि उसने समझ-बूझकर ही तुम्हें इस जाल में फाँसा है। यदि यही हो, तो तुम्हारा भविष्यत् जीवन नष्ट हो जायगा—क्या तुम यह नहीं समझ सकते ? जात-पाँत से ख़ारिज़ होने की बात अभी मैं नहीं कहता। मैं कहता हूँ कि अभी कुछ दिन आँख-कान खुले रहने दो—रजिस्ट्रार को नोटिस देने की ऐसी क्या जल्दी पड़ी है ?"

"जल्दी है—कलेक्टर साहब के इन्कायरी करने के भय से।"

"न होगा तो मैं उसे कुछ दिन और दबा रक्खूँगा। बिना मेरी रिपोर्ट पाये साहब न आवेंगे। पहले दो-एक तक़ाज़े आने दो, फिर मैं रिपोर्ट भेजूँगा। तुम महीने भर के लगभग या कम से कम पन्द्रह दिन तक सब्र करो। विवाह—जिसका फल वंशावली-क्रम से आजीवन भोगना होगा—क्या चटपट निबटा लेने की चीज़ है?"

बलदेव ने कुछ सोचकर कहा—अच्छा यही सही। मैं ठहरा रहूँगा।

सुरेश बाबू ने उसकी छुट्टी की दरख़्वास्त फाड़कर फेंक दी। बलदेव चला गया।

बँगले पर जाकर देखा, तेजकुँवरि का बेहरा एक चिट्ठी लिये खड़ा है। आज तेजकुँवरि ने इसे 'प्रियतम' लिखकर, सान्ध्य भोजन के लिए निमन्त्रित किया है। दस्तख़त किये हैं "तुम्हारी प्रेमार्थिनी तेजकुँवरि।"

चिट्ठी पढ़कर बलदेव ने बेहरा से कहा—"जाओ, फिर जवाब भेज देंगे।" कुछ देर में लिख भेजा—आज तबीअत अच्छी नहीं है—रात को कुछ खाने की इच्छा नहीं। उस वक़्त मिलूँगा।

शाम को जाकर देखा तो तेजकुँवरि बग़ीचे में खड़ी फूल तोड़ रही है। हर्षोत्फुल्ल नेत्रों से इसको देखकर वह बोली—आओ, कैसी तबीअत है?

"बहुत ख़राब।"

"क्यों, क्या हो गया?"

"सिर में बड़ा दर्द है।"

इस समाचार से मिस सोंधी बेहद बेचैन हो गई। बोली—आओ, तुम्हारे सिर में ओडिकलोन लगा दूँ।

तेजकुँवरि के पीछे-पीछे बलदेव बैठक में गया। गुलाबजल मिलाकर ओडिकलोन को तेजकुँवरि उसके सिर में लगाने लगी।

बलदेव को ज़रा आराम-सा हुआ देखकर उसने पूछा—छुट्टी के लिए दरख़्वास्त दे दी?

"नहीं।"

"क्यों?"—तेजकुँवरि की आवाज़ से अद्भुत उत्कण्ठा प्रकट हुई।

"अभी बहुत काम पड़ा है, कुछ दिन ठहरो।"

तेजकुँवरि निराश होकर नीचे की ओर देखने लगी। ज़रा देर में बलदेव ने खड़े होकर कहा—अब जाता हूँ।

मिस सोंधी ने कातर स्वर में पूछा—अभी क्यों चले?

"बर्फ़ आज न लगाऊँगा"—कहकर बलदेव विदा हुआ।

लगातार तीन दिन बलदेव उस रास्ते से निकला भी नहीं। इन तीन दिनों में तेजकुँवरि ने उत्कण्ठित होकर उसे कई पत्र लिखे—कई बहाने करके उसे बुला भेजा, किन्तु वह एक न एक कारण बताकर टरकाने लगा।

चौथे दिन रविवार था। दोपहर को बलदेव ने सोचा—सुरेश बाबू से भेंट कर आऊँ—लौटते समय तेजकुँवरि को भी देखता आऊँगा।

घण्टे भर के लगभग सुरेश बाबू के घर बैठकर बलदेव गप-शप करता रहा। उस गुमनाम चिट्ठी को निकालकर दोनों उसके भेजनेवाले के सम्बन्ध में तरह-तरह के अनुमान करने लगे। पाँच बजने के बाद बलदेव उठा और तेजकुँवरि के घर की ओर चला।

फुलवाड़ी लाँघकर सामने के बरामदे के पास पहुँचते ही बलदेव ने देखा, हाथ में एक पत्र लिये बेहरा बाहर आ रहा है। बलदेव को देखते ही उसने सिटपिटाकर चटपट पत्र को अपने अङ्गे के पाकेट में छिपा लिया।

इसी रङ्ग के और ऐसे ही लिफ़ाफ़े में तेजकुँवरि सदा बलदेव को पत्र भेजा करती है। बेहरा का आचरण और उसके मुख का भाव देखकर बलदेव को सन्देह हुआ। उसने पूछा—किसकी चिट्ठी है रे ?

बेहरा ने अकचकाकर कहा—हुजूर चिट्ठी नहीं एक कागज़ है।

बलदेव ने लाल आँखें करके कहा—देखें कैसा कागज़ है।

बेहरा ने काँपते हुए हाथ से चिट्ठी निकालकर दे दी। बलदेव ने देखा कि लिफ़ाफ़े पर नाम तो उसी का है—यद्यपि तेजकुँवरि के हस्ताक्षर नहीं हैं। चटपट खोलकर पढ़ा;—

सिरीमान वर्माजी महाराज,

मेमसाहब बहुत मांदे हन। मँजे पर पये हन। सिर-पीड़ बहुत हुन्दी है। तुसीं किरपा करके छेती आउणाता उन्हांनूँ देख जाणा। थोड़े लिखे नूँ बहुता समझना।

बीबी सुन्दर

चिट्ठी पढ़ते ही बलदेव के मन में एक बात बिजली की तरह समा गई। चिट्ठी को पाकेट में रखकर उसने घर में जाकर देखा कि बरामदे में तेजकुँवरि और सुन्दर ताश खेल रही हैं—हाथ में ताश लिये तेजकुँवरि ज़ोर से हँस रही है।

जूते की आहट पाकर, बलदेव को देखते ही वे दोनों हड़बड़ाकर खड़ी हो गईं। सुन्दर ताश समेटकर दूसरे कमरे में चली गई।

बलदेव ने बरामदे में पहुँचकर देखा, तेजकुँवरि का चेहरा सफ़ेद हो रहा है। उसने घबराहट-पूर्ण स्वर से कहा—आओ। इतने दिन कहाँ रहे?

बलदेव उसको कड़ा नज़र से देखकर बोला—तुम्हारे सिर में दर्द है न?

तेजकुँवरि माथे को पकड़कर बोली—हाँ जी, तीन बजे से हो रहा है। तुमसे किसने कहा?

"तुम्हारे बरामदे में आते ही मुझे बेहरा के हाथ से चिट्ठी मिली है। सुन्दर ने लिखी है।"

"हाँ, सुन्दर से कहा था कि चिट्ठी लिखकर आपको बुलवा दे।"

"अच्छा, एक काम करो—ज़रा गुलाबजल और ओडी-कलोन मिलाकर सिर में लगाओ। मुझे तनिक जल्दी जाना है।"—यह कहकर बलदेव चटपट बाहर आ गया।

जितनी जल्दी हो सका सुरेश बाबू के बँगले पर जाकर बलदेव ने देखा, वे कुर्सी टेबिल बाहर निकलवाकर, बरामदे

के नीचे फुलवाड़ी में बैठे हैं। बलदेव ने हाँफते-हाँफते कहा—वह गुमनाम चिट्ठी तो निकालिए।

टेबिल के ऊपर ही आफ़िस-बॉक्स रक्खा था। सुरेश बाबू ने चिट्ठी बाहर निकाल ली।

बलदेव ने खड़े ही खड़े उस चिट्ठी को और सुन्दर की इस चिट्ठी को पास ही पास रखकर मिलान किया। फिर दोनों को सुरेश बाबू के आगे फेककर कहा—"देखिए, एक ही हाथ की लिखी हुई हैं या नहीं।"—बलदेव ने पाकेट से रूमाल निकालकर माथे का पसीना पोंछा। फिर वह एक कुर्सी पर बैठ गया।

दोनों पत्रों की जाँच कर सुरेश बाबू ठठाकर हँस पड़े। उन्होंने कहा—एक ही हाथ की लिखावट है, एक-एक अक्षर मिलता है। पहली चिट्ठी बुँदेलखण्डी बोली में किसी की सहायता से इसलिए लिखी है जिसमें सिद्ध हो जाय कि शिकायत बस्तीवालों ने की है। क्यों, देख लिया न? वृद्धस्य वचनम्—

जो घटना हुई थी उसका हाल बलदेव ने सुना दिया।

सुरेश बाबू ने कहा—धर्म की कल हवा में हिल गई है। तीन-चार दिन से तुम गये नहीं—उन्होंने सोचा, तुमने ज़ंजीर तुड़ा ली। इसी से सुन्दर से चिट्ठी लिखवाई जिससे कि तुम सोचो कि बेचारी इतनी बीमार है कि स्वयं चिट्ठी तक नहीं लिख सकती। बेहरा को अवश्य ही सिखला दिया होगा कि यदि साहब पूछे तो कह देना—मेम साहब बिछौने पर

पड़ी छटपटा रही हैं। बेहरा तुम्हारे बँगले पर जायेगा—इसके बाद तुम आओगे—इसी बीच ताश की बाज़ी मारकर मेम साहब बिछौने पर पड़ी-पड़ी छटपटाने भी लगतीं। उन्हें क्या ख़बर थी कि तुम एकदम से जा पहुँचोगे!

बलदेव ने पूछा—अच्छा, नौकरनी से चिट्ठी में अपनी बदनामी गुमनाम से लिखवाने में उसका क्या मतलब था?

सुरेश बाबू ने कहा—मतलब तो आइने की तरह साफ़ दीख रहा है। ज़रा गड़बड़ होगी, धर्म समझ कर तुम उसे ब्याह लेने को राज़ी हो जाओगे—बस इतना ही। जिस उद्देश से चिट्ठी लिखाई थी वह सफल होने भी जा रहा था। देख लो अपनी सरला अबला की कीर्ति। ओह—जो स्त्री, अपने हाथ से, अपने ही लिए ऐसा कलङ्क खड़ा कर ले सकती है उसके लिए असाध्य ही क्या है? अब तुम्हारी आँखें खुल गईं न?

"भला अभी तक न खुलेंगी।"

"वाह! भाई ख़ूब बचे। निर्मल जलाशय के भ्रम से इस गन्दी तलैया में ग़ोता लगाने जा रहे थे! ख़ूब बचाया भगवान्!"

दूसरे दिन, तीन महीने की छुट्टी के लिए बलदेव ने दरख़्वास्त दे दी। छुट्टी लेकर वह घर गया। वहाँ माता की पसन्द की हुई उसी सुन्दरी कुमारी के साथ उसने विवाह कर लिया।

युगल साहित्यिक

१

शुभ संवाद

सन्ध्या के पश्चात् कलकत्ते के एक बढ़िया तिमंज़िले मकान की बैठक में बैठे, चाय के प्याले हाथ में लिये, तीन युवक बातचीत कर रहे हैं।

घर के मालिक का नाम राजेन्द्रनाथ वसु है। उम्र पचीस वर्ष की है। सिर पर बड़े-बड़े बाल हैं, जो बीच से दो भागों में विभक्त हैं; ख़ूबसूरत पुरुष है। देश में ज़मींदारी है, कलकत्ते में दो मकान और भी हैं। घर में किसी बात की कमी नहीं। नौकरी अथवा कोई उद्योग नहीं करना पड़ता। दूसरे दोनों पड़ोसी मित्र हैं। एक का नाम अधरचन्द्र और दूसरे का शरदिन्दु है।

महल्ले के और दो युवक आ गये। बग़लवाले कमरे में चाय के लिए पानी खौल रहा है। राजेन्द्र की आज्ञा से, पाँच मिनिट के भीतर, नौकर और दो प्याले चाय बना लाया।

सन्ध्या के पश्चात् राजेन्द्रनाथ के घर चाय का सदावर्त खुल जाता है।

बातचीत करते-करते राजेन्द्रनाथ बीच-बीच में घड़ी पर दृष्टि डालता जाता है। बाहर पैरों की आहट पाते ही वह द्वार की ओर देखता है। उसके इस भाव को ताड़कर शरदिन्दु ने कहा—आज तीनकौड़ी बाबू अभी तक नहीं आये!

राजेन्द्र—यही तो सोचता हूँ। आज अभी तक क्यों नहीं आया? आठ बजने को है।

आठ बजने के पहले ही तीनकौड़ी आ गया। आज उसके चेहरे से हँसी फटी पड़ती है।

राजेन्द्र ने पूछा—क्यों भई, आज इतनी देर क्यों हुई?

तीनकौड़ी एक कुर्सी पर बैठकर बोला—आज आफ़िस से उठने में ही देर हो गई। भई, एक शुभ समाचार है।

सभी उत्सुक होकर तीनकौड़ी के चेहरे की ओर देखने लगे। राजेन्द्र ने पूछा—क्या, बतलाओ।

"मेरी तरक़्क़ी हो गई।"

राजेन्द्रनाथ ने ज़ोर से टेबिल पकड़कर कहा—हुर्रे! वेतन कितना बढ़ा?

तीनकौड़ी—पचीस रुपये।

राजेन्द्रनाथ के चेहरे पर आनन्द-ज्योति खिल गई। उसने कहा—भैयो! आओ, आज और एक-एक प्याला चाय पीवें। अरे रामधनियाँ—और चाय ले आ।

सभी उपस्थित लोग आनन्द मनाने लगे। शरदिन्दु ने कहा—सिर्फ़ चाय पीकर ही हम न छोड़ेंगे। यथारीति भोज होना चाहिए। बोलिए तीनकौड़ी बाबू, कब खिलाइएगा ?

राजेन्द्र ने बीच में ही कहा—तीनकौड़ी की ओर से मैं ही दावत दूँगा। कहिए, किस दिन चाहिए ?

अधर—इसी शनिवार को।

"बहुत अच्छा। मञ्जूर है।"

चाय का नया प्याला ख़ाली करते-करते, बड़े उत्साह के साथ, भोज के सम्बन्ध में परामर्श होने लगा।

महीने के तीसों दिन सन्ध्या-समय तीनकौड़ी राजेन्द्र के समीप ही बैठता-उठता है। आफ़िस से आकर हाथ-मुँह धोने में जितना समय लग जाता हो सो लग जाता हो—इसके बाद यहीं आ जाता है। प्रत्येक सायङ्काल को यहीं पर वह चाय के प्याले का स्वागत करता है। यहीं पर नाश्ता करता है; यह नियम कई वर्ष से चला आता है।

बाल्यकाल से ही तीनकौड़ी और राजेन्द्रनाथ में प्रगाढ़ मित्रता है। राजेन्द्र यद्यपि धनी बाप का बेटा है और तीनकौड़ी के पिता साधारण नौकर-पेशा थे, तथापि दोनों की मित्रता के बीच कोई बाधा नहीं हुई। दोनों की प्रायः एक-सी उम्र है, बचपन में एक ही मदरसे में पढ़ते थे, एक साथ ही प्रवेशिका-परीक्षा पास कर कालेज में पहुँचे। बी० ए०

में पढ़ते समय, कुछ दिनों के आगे-पीछे, दोनों का विवाह हुआ। तब से दोनों की मित्रता और भी गाढ़ी हो गई। अपनी-अपनी नवीना प्रेयसी की गुणावली एक दूसरे को लगातार सुनाते-सुनाते किसी प्रकार इन्हें तृप्ति न होती थी, और उक्त महाशयाओं के पितृ-गृह में रहते समय यदि किसी की प्रेम-पत्रिका आ जाती तो जब तक वह मित्र को दिखला न ली जाती तब तक कल न पड़ती थी।

इस समय से इन दोनों की मित्रता के और भी निविड़ हो जाने का एक और कारण उपस्थित हो गया।—दोनों ने कविता करना आरम्भ कर दिया।

एक मित्र यदि कुछ पद्य बनाता तो दूसरे को दिखाने के लिए दौड़ा चला आता। यह नहीं कि उन दिनों इन लोगों ने, कविता को प्रकाशित कराने की चेष्टा नहीं की। दोनों ने कई कविताएँ कुछ मासिकपत्रों में छपने के लिए भेजी थीं, किन्तु उन्हें सम्पादक लोग धन्यवाद-पूर्वक वापिस भेजने लगे। राजेन्द्र ने कहा—"मासिक-पत्रों के सम्पादक लोग काव्य का विचार करने में नितान्त अपटु हैं,—छपने के लिए इनके पास कविता भेजना वैसा ही है जैसा कि भैंस के आगे बीन बजाना। "परामर्श स्थिर हो गया—जब समय आवे—दोनों ही अपनी रचना को पुस्तकाकार छपवाकर साहित्य-जगत् को एकाएक चमत्कृत कर देंगे। राजेन्द्र अब तक न जाने कब का अपनी कविताएँ छपाकर उक्त जगत् को स्तम्भित कर चुका

होता। किन्तु तीनकौड़ी के पास इतना द्रव्य नहीं—पुस्तक छपाने की सामर्थ्य उसमें न थी—वह राजेन्द्र से अर्थ-साहाय्य ग्रहण करने के लिए भी तैयार नहीं—इसी से विवश होकर अब तक साहित्य-जगत् को वञ्चित रहना पड़ा।

चाय के प्याले ख़ाली हो चुकने पर भोज का परामर्श पक्का हो गया। अभ्यागत सज्जन एक-एक कर विदा हुए। केवल तीनकौड़ी रह गया।

एकान्त पाकर राजेन्द्र ने कहा—चलो—इतने दिनों के बाद अब ज़रा तङ्गी दूर हुई। अब वैसी तङ्गी तो न रहेगी!

तीनकौड़ी—हाँ भैया। ऐसी दशा थी कि किसी महीने एक पैसा भी न बचा सकता था!—इस दफ़ा ज़रा साँस ले सकूँगा।

राजेन्द्र कुछ सोचने लगा। अन्त में ही-ही कर ज़रा हँस दिया।

तीनकौड़ी—क्यों? हँसे क्यों?

"एक बात सोचता हूँ।"

"क्या? बतलाओ न।"

"याद है? एक दिन हम लोगों ने कहा था—पुस्तक छपवाकर अपनी कविताओं को प्रकाशित करेंगे।"

"ख़ूब याद है। और मुझे यह भी याद है कि मैं अपनी पुस्तक छपाने का व्यय न दे सकता था, सिर्फ़ इसी लिए आपने अपनी कविताओं को भी नहीं छपाया।"—यह कहकर तीनकौड़ी ने मित्र को स्नेह-पूर्ण दृष्टि से देखा।

राजेन्द्र—नहीं—नहीं—वह बात नहीं। अच्छा,—पुस्तक छपाने में कितना ख़र्च होगा ?

तीनकौड़ी ने बहुत दिन पहले ही छापेख़ानेवालों से मालुम कर रक्खा था कि कैसी पुस्तक छपाने में कितना ख़र्च लगता है—और किस काग़ज़ का क्या मूल्य है। राजेन्द्र को सब हिसाब बताकर कहा—तसवीरें लगाओगे? मैं तो तसवीरें न लगा सकूँगा—तुम अपनी पुस्तक में दो-एक रङ्गीन और चार-पाँच सादे चित्र लगा सकते हो। आज-कल तो सभी पुस्तकों में तसवीरें होती हैं।

[illegible] लगेगा,—चित्र संयोजित करने का प्रलोभन उसके मन में बेतरह था। किन्तु ख़र्च का हिसाब सुनकर वह समझ गया कि यह बात तीनकौड़ी की सामर्थ्य से बाहर की होगी। अतएव उसने उस प्रलोभन को मन में ही दबाकर कहा—नहीं, चित्रों का पचड़ा हटाइए।—सादी पुस्तक ही भली है।

सब ठीक-ठाक हो गया। एक ही प्रेस में, एक ही क़िस्म के काग़ज़ पर, दोनों की कविता-पुस्तकें छपेंगी।

रात्रि अधिक होती देख तीनकौड़ी उठा। राजेन्द्र ने कहा—तो अब और देर न करो। प्रेस में देने के लिए कापी झटपट तैयार कर लो।

तीनकौड़ी ने कहा—बहुत अच्छा, सबेरे से ही मैं काम शुरू कर दूँगा।

२

बड़ा भाई और छोटा भाई

प्रेस के लिए कापी तैयार करते-करते तीनकौड़ी के मन में दुबिधा उपस्थित हुई। पुरानी कविताओं को वह जितना ही पढ़ै उतना ही सोचे—छिः छिः, इसे छपाने से क्या होगा!—दो वर्ष पहले उसे ये अपनी कविताएँ उच्च प्रति की जँचती थीं,—किन्तु अब वही नितान्त विशेषता-विहीन और बहुत ही साधारण जँचने लगीं।

एक दिन शाम को वह राजेन्द्र के यहाँ जाकर क्षुण्ण स्वर से बोला—भाई, तुम पुस्तक छपवा लो—मैं न छपाऊँगा।

राजेन्द्र ने विस्मय करके पूछा—क्यों? एकाएक क्या हो गया?

"मेरी वह बेतुकी भद्दी रद्दी छपाने से क्या लाभ?—सिर्फ़ लोगों के आगे हास्यास्पद होना होगा।"

राजेन्द्र के मन में पहले से ही यह धारणा थी कि मेरी कविताएँ तीनकौड़ी की अपेक्षा बहुत उच्च कोटि की हैं। 'आर्ट' कहने से जिसका ज्ञान होता है वह मेरी कविताओं में है—तीनकौड़ी की रचना में नहीं। तीनकौड़ी अपने मित्र के इस भाव को जानता था; किन्तु स्नेह के कारण उसने कभी इसका प्रतिवाद नहीं किया। ख़ुशामद की ग़रज़ से नहीं, मित्रता की कामना से ही वह बीच-बीच में इस भ्रान्त विश्वास का अनुमोदन भी कर देता था।

राजेन्द्र ने कहा—नहीं—नहीं,—हास्यास्पद क्यों होगे? जब कापी तैयार हो जाय तब मुझे दिखाना—मैं ध्यान से देखकर जहाँ परिवर्तन की आवश्यकता समझूँगा, कर दूँगा। सारे दोष दूर हो जायँगे।

तीनकौड़ी ने इस आश्वासन को कहीं अधिक भीतिप्रद समझा। उसने कहा—भैया, दुहरी थेगली लगाने से क्या होगा?—जाने भी दो।

राजेन्द्र ज़रा चुपका हो रहा। अन्त में उसने कहा—"तुम न छपाओगे तो फिर मैं भी छपा चुका!"—उसके स्वर से बड़ी निराशा प्रकट हुई।

तीनकौड़ी—तुम्हारी कविता बढ़िया है,—तुम क्यों न छपाओगे भैया?—तुम ज़रूर छपवाओ।

"नहीं—यह कभी न होगा।"—कहकर राजेन्द्र ने गम्भीर भाव धारण कर लिया।

उसकी यह दशा देख अन्त में तीनकौड़ी ने कहा—अच्छा, तो फिर मैं भी छपाऊँगा।—किन्तु बड़ी पुस्तक नहीं। मुझे जो कविताएँ अच्छी जँचेंगी उन्हीं को चुनकर छपा लूँगा।

राजेन्द्र—तो मेरी पुस्तक बड़ी, और तुम्हारी छोटी होगी?

तीनकौड़ी ने स्नेहार्द्र स्वर में कहा—मैं भी तो छोटा हूँ। तुम्हारी किताब होगी बड़ा भाई और मेरी होगी छोटा भैया। तुम्हारी अपेक्षा मेरी पुस्तिका सभी बातों में छोटी होगी; आकार में भी छोटी,—कवित्व में भी घटिया।

अन्तिम बात में तो राजेन्द्र को तिल भर भी सन्देह न था। उसने हँसकर कहा—अच्छा, यही सही। किन्तु अब से एक काम किया करो।—ज्योंही तुम्हारे मस्तिष्क में कोई कविता आवे त्योंही पहले हमें सुना दिया करो। हम तुम्हें समझा देंगे कि किस साँचे में बैठा देने से वह बहुत अच्छी लगेगी। तुम कुछ चिन्ता न करो—हम भली भाँति जानते हैं कि तुम्हारे भीतर पदार्थ है। आवश्यकता है तुम्हें ज़रा-से उपदेश की। हम तुम्हें तैयार कर लेंगे; फिर दोनों भाई दिग्विजय करने निकलेंगे।

यथासमय तो कह नहीं सकते—बहुत विलम्ब और बड़ी टालमटोल करके छापेख़ाने ने अन्त में दोनों पुस्तकें छापकर तैयार कर दीं। राजेन्द्र की पुस्तक का नाम हुआ 'प्रसूनाञ्जलि' और तीनकौड़ी की पुस्तक का नाम 'गुञ्जार'।

ज्योंही पुस्तक छपकर आई त्योंही सबसे पहले दोनों ने एक दूसरे के कर-कमल में अकृत्रिम प्रणयोपहार-स्वरूप एक एक प्रति अर्पण कर दी।

इसके पश्चात् पहला काम हुआ, प्रधान-अप्रधान सभी सम्पादकों के पास एक-एक प्रति समालोचनार्थ भेजना। दिन भर यही एक काम हुआ।

तीनकौड़ी ने कहा—सम्भव है, अब की बार मासिक-पत्रों के सम्पादक कविता भेजने के लिए तुमसे आग्रह करें।—तुमपर ख़ूब ज़ुल्म होना आरम्भ होगा।

राजेन्द्रनाथ ने उदारतापूर्वक कहा—जो नितान्त आग्रह करेंगे तो एक-आध कविता दे दी जायगी।—तुम्हारी हस्त-लिखित कविताओं में से दो-एक चुनकर भेज दी जावेंगी।

तीनकौड़ी—भैया की बातें। मेरी रचना को न कोई पसन्द करेगा और न छापेगा।

राजेन्द्र—क्यों।—छापेंगे नहीं?—झख मारेंगे और छापेंगे!—मैं उन्हें इसी शर्त पर कविता भेजूँगा कि तुम्हारी रचना को भी प्रकाशित करें। जो सम्पादक तुम्हारी कविता छापना पसन्द न करेंगे—उन्हें हमारी कविता न मिल सकेगी—कितना ही सिर क्यों न पटका करें।—तीनकौड़ी की पीठ ठोककर राजेन्द्र ने और भी कहा—हम दोनों भाई हैं।—जहाँ बड़ा भाई है वहाँ छोटा भाई भी रहेगा।—जो छोटे भाई का आदर न करेंगे उनके हाथ बड़ा भाई न आवेगा।

स्नेह से और आनन्द से तीनकौड़ी के नेत्र सजल हो गये। हाय रे अभागियो!—किस बुरे मुहूर्त में तुमने पुस्तक छपाई थी!

सम्पादकों के पास जब किताब भेजी जा चुकी तब अन्य लोगों को उपहार देने की धूम मची। राजेन्द्र की पुस्तक की तीस कापियाँ तो उसकी ससुराल में ही गईं। ससुराल में एक रसोइया था जो नाममात्र को लिख-पढ़ लेता था, उसे भी जमाई बाबू की कविता-पुस्तक की एक प्रति इनाम में दी गई। राजेन्द्र की बैठक में पधारकर प्रतिदिन चाय-पान करनेवाले

प्रत्येक व्यक्ति को उभय ग्रन्थ प्राप्त हुए। महल्ले में जो मातविर लोग थे तथा और जान-पहचानवाले थे उनके कर-कमल भी खाली नहीं रहे। जो इष्ट-मित्र अन्यान्य स्थानों में रहते थे उनके समीप भी एक-एक प्रति भेजी गई। बङ्गाल के सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वानों और प्रधान-प्रधान साहित्यिकों के पास डाक-द्वारा एक-एक प्रति भेजी गई। इसके पश्चात् कुछ दिनों तक—दोनों मित्र भेंट होने पर—आलोचना किया करते थे कि किसी को पुस्तक भेजना भूल तो नहीं गये। "अरे—अमुक के पास मैंने पुस्तक नहीं भेजी—तुमने भेज दी है या नहीं?"—"नहीं भैया, मैं भी भूल गया। छिः-छिः, वह क्या कहता होगा।"—इस ढँग की बातें प्रायः होने लगीं। भूल-सुधारने में रत्ती भर भी विलम्ब न किया जाता था।

पुस्तक-विक्रेताओं की दूकानों में भी बिक्री के लिए पुस्तक भेजी गई। किन्तु उन्होंने एक साथ अधिक प्रतियाँ लेना स्वीकार नहीं किया,—कह दिया, हमारे गोदाम भरे पड़े हैं—रखने को जगह नहीं।

राजेन्द्र कई मासिकपत्रों का ग्राहक था। दोनों ही अधीर हो रहे थे कि देखें समालोचना कब प्रकाशित होती है—किस संख्या में निकलती है। कोई मासिकपत्र आता तो तुरन्त खोलकर सबसे पहले समालोचना की खोज होती थी।

उस दिन शाम को तीनकौड़ी ने आकर देखा, राजेन्द्र कुछ उदास है। बैठकर पूछा—क्यों, क्या हुआ है?

राजेन्द्र ने कुछ उत्तर न देकर, दराज़ से एक नया मासिक-पत्र निकाला।

तीनकौड़ी ने उत्कण्ठित होकर पूछा—क्या वङ्ग-प्रभा है? समालोचना निकली है?—देखें भला।

राजेन्द्र ने एक जगह खोलकर तीनकौड़ी के हाथ में वह पत्र दे दिया।

तीनकौड़ी ने देखा कि प्राप्ति-स्वीकार के संक्षिप्त समालोचनावाले स्तम्भ में उसकी पुस्तक 'गुञ्जार' की आलोचना है। फुर्ती से वह उसे पढ़ गया। विशेष कुछ नहीं—पतले टाइप में कुल बारह-चौदह सतरें हैं। चार-पाँच सतरों में ग्रन्थ और ग्रन्थकार का नाम, ग्रन्थ का आकार, पृष्ठ-संख्या, प्रेस, प्रकाशक का उल्लेख और मूल्य आदि की चर्चा है। शेष पंक्तियों में आलोचना है। पुस्तक को उसने अच्छा ही कहा है। लिखा है—इस नव्य कवि की भाषा में झङ्कार है, भाव में नवीनता और गम्भीरता है, उसका भविष्यत् आशाप्रद है। साहित्य-मण्डल में हम तीनकौड़ी बाबू को सादर ग्रहण करते हैं।

पढ़कर तीनकौड़ी ने साँस लेकर कहा—बच गये!—निन्दा नहीं की।

राजेन्द्र ने कहा—निन्दा क्यों करेगा?—प्रशंसा तो ख़ूब की है।

काग़ज़ को उलट-पलटकर तीनकौड़ी ने कहा—अरे! प्रसूनाञ्जलि की समालोचना नहीं है!—भला ऐसा क्यों हुआ?

राजेन्द्र ने निराश भाव से कहा—भाई इस बात को कैसे मालूम करें?

'यही तो बात है'—कहकर वह 'गुञ्जार' की समालोचना को चाव के साथ दुबारा पढ़ने लगा। इन्हीं साधारण प्रशंसा-वाक्यों से उसके अन्तःप्रदेश में आनन्द की हिलोड़ें उठने लगीं। सहसा राजेन्द्र ने ठण्ढी साँस ली। उसे सुनकर तीनकौड़ी चौंक पड़ा और ज़रा लज्जित हो गया। किसी ने मानो उसके भीतर चाबुक लगाकर कहा—स्वार्थी!

तीनकौड़ी—मुझे तो जान पड़ता है कि जब 'गुञ्जार' के सम्बन्ध में ये बातें लिखी हैं तब 'प्रसूनाञ्जलि' की और भी बढ़िया समालोचना करेगा।

राजेन्द्र—देखना चाहिए क्या लिखता है!

चाय आई।—पीते-पीते दोनों ने गप-शप करना आरम्भ कर दिया। थोड़ी देर में ही अधरचन्द्र आ गया। उसे राजेन्द्र ने समालोचना पढ़ने के लिए दी। पढ़कर वह बोला—इन दस पंक्तियों में समालोचना लिखने की अपेक्षा न लिखना ही भला!—जो समालोचना करनी है तो ज़रा विस्तार से करो।

तीनकौड़ी—जैसी पुस्तक होगी वैसी ही तो आलोचना होगी! अच्छी-अच्छी पुस्तकों की समालोचना विस्तार के साथ की है—देख न लो।

प्रसूनाञ्जलि की समालोचना न होने की बात सुनकर अधर ने अपना मत प्रकट किया—जान पड़ता है, उसकी आलोचना ज़रा विस्तार के साथ लिखेगा—शायद इस महीने पत्र में स्थान न रहा हो।

तीनकौड़ी—मुझे भी ऐसा ही जान पड़ता है।

वहाँ से घर जाते समय तीनकौड़ी की इच्छा हुई कि स्त्री को दिखाने के लिए मासिकपत्र माँग ले—किन्तु माँगने की प्रबल इच्छा करके भी माँग न सका। उसे रह-रहकर राजेन्द्र की ठण्ढी साँस की याद आने लगी। सोचा—कैसा अच्छा होता, यदि दोनों पुस्तकों की आलोचना एक साथ प्रकाशित होती!—नहीं—इस अधूरे आनन्द में कुछ मज़ा नहीं।

तीनकौड़ी के चले जाने पर कोई बीस मिनट में राजेन्द्र ब्यालू करने भीतर गया तो देखा कि वहाँ तीनकौड़ी की नौकरनी बैठी है।

भोजनवाले कमरे में प्रवेश करते ही राजेन्द्र की स्त्री ने पूछा—क्यों जी, तुम्हारे पास इस महीने की 'वङ्ग-प्रभा' है?

"क्यों?"

"किरण ने चिट्ठी भेजी है। कल सबेरे ही लौटा देने कहती है।"—किरणबाला तीनकौड़ी की पत्नी का नाम है।

राजेन्द्र पीढ़े पर बैठना चाहता था—यह बात सुनकर ठिठक रहा।—भौंहें सिकोड़कर उसने लहमे भर न जाने क्या सोचा। इसके बाद जूता पहनकर खटपट करता हुआ

बाहर चला गया;—उसने "वङ्ग-प्रभा" लाकर स्त्री के पैरों के पास फेंक दी।

स्त्री कुछ कह न सकी, स्वामी के मुँह की ओर कई मिनट तक देखती रही। इसके बाद पत्रिका उठा ली और चौके से निकलकर नौकरनी को दे दी।

नौकरनी ने शङ्कित स्वर में कहा—"मालकिन, क्या बाबू नाराज़ हो गये हैं?"—बरामदे में बैठकर उसने खुले दरवाज़े से सब कुछ देख लिया था।

"नहीं तो, नाराज़ भला क्यों होंगे?"

किन्तु नौकरनी को इस बात पर विश्वास न हुआ। कुछ चिन्तित होकर वह घर लौट आई। जो कुछ देख-सुन आई थी, सब जाकर कह दिया।

इधर राजेन्द्र सिर नीचा कर, किसी प्रकार भोजन करके उठ गया। वह मन ही मन कह रहा था, अकृतज्ञ!—स्वार्थ-पर! एक मिनट के भी विलम्ब को न सह सका? घर पहुँचते ही स्त्री से चर्चा छेड़ दी? आनन्द में इतना उन्मत्त हो गया!

किन्तु दूसरे दिन मन ही मन राजेन्द्र को बड़ी लाज लगी। उसने सोचा, कल तीनकौड़ो पर मैं नाहक़ बिगड़ रहा था। अपनी पुस्तक की अच्छी समालोचना होने की बात स्त्री को सुनाकर उसने कौन-सा अपराध किया है? और स्वामी की प्रशंसा को पढ़ने के लिए आग्रह करना उसकी भार्या के लिए नितान्त स्वाभाविक है। हाँ, यदि इसी संख्या में हमारी

पुस्तक की किसी प्रकार निन्दा प्रकट होती और उस अवस्था में भी तीनकौड़ी वैसा ही वर्ताव करता, तो अवश्य नाराज़ होने या अभिमान करने के लिए कारण हो सकता। जो नौकरनी ने जाकर कह दिया होगा तो तीनकौड़ी न जाने क्या समझेगा।

इधर तीनकौड़ी ने भी जब सुना कि किरण ने बिना ही पूछे 'वङ्ग-प्रभा' माँगने के लिए राजेन्द्र के घर नौकरनी को भेजा है तब वह मन ही मन संकुचित हो गया। इसके पश्चात् नौकरनी ने लौटकर जब सब बातें कहीं तब वह लज्जा के मारे गड़ गया। स्त्री पर उसे क्रोध भी हुआ। तीनकौड़ी सोचने लगा—'छिः छिः, बड़ी बेजा बात हो गई। राजेन्द्र मुझे अत्यन्त स्वार्थी और हृदय-शून्य समझता है।' इस चिन्ता के मारे उसे रात को अच्छी नींद नहीं आई। दूसरे दिन दफ़्तर में भी उसका जी नहीं लगा।

शाम को तीनकौड़ी के आने पर राजेन्द्र ने मुसकुरा कर पूछा—क्यों भई, रात को गृहिणी ने आलोचना पढ़कर क्या कहा?

तीनकौड़ी ने लजाकर कहा—कहेगी क्या? यही कहा कि खूब लिखा है।

"कुछ अतिरिक्त पुरस्कार-उरस्कार नहीं दिया? दो-चार अधिक पान के बीड़े या और कुछ?"—यह कहकर राजेन्द्र वक्र-हँसी हँसा।

इस प्रकार हास्य-परिहास से घुलकर दोनों के हृदयों ने फिर स्वाभाविक स्वस्थता प्राप्त कर ली।

३

विवाह-सभा

दो दिन के पश्चात् चोर-बागान के काली मित्र के यहाँ से विवाह का निमन्त्रण दोनों को मिला। शाम होने पर तीन-कौड़ी सज-धजकर आ गया। राजेन्द्र के साथ, उसी की गाड़ी में, वह चोर-बागान गया।

ये लोग विवाह की मजलिस में बैठे गप-शप कर रहे थे कि एक प्रौढ़-वयस्क व्यक्ति आकर उपस्थित हुए। ज्योंही वे आये त्योंही चारों ओर से 'आइए, आइए' का शब्द होने लगा। उन्हें जगह करने के लिए कई सम्भ्रान्त पुरुष आदर से इधर-उधर हटने लगे। "रहने दीजिए—रहने दीजिए, आप लोग कष्ट न कीजिए, मैं यहीं बैठता हूँ"— कह कर वे तीनकौड़ी और राजेन्द्र के समीप ही बैठ गये।

समीप में बैठे हुए एक परिचित व्यक्ति से तीनकौड़ी ने पूछा—ये कौन हैं?

"पहचानते नहीं? ये पण्डित गङ्गाधर तिवारी हैं, 'आद्याशक्ति' के सम्पादक। अच्छा, मैं पहचान कराये देता हूँ—" कहकर उन्होंने कहा—तिवारीजी, ए तिवारीजी! ज़रा इस तरफ़ न आ जाइए। ये आप से बातचीत करना चाहते हैं। इनका नाम तीनकौड़ी विश्वास है, बङ्गाल-बैंक में नौकर हैं, और कविता भी करते हैं। इनका नाम राजेन्द्र

बाबू—राजेन्द्रनाथ वसु है। ये भले घर की सन्तान हैं। श्यामपुकुर के विजयकृष्ण वसु महाशय का नाम सुना है न? ये उन्हीं के पुत्र हैं।

तिवारीजी—बड़ी प्रसन्नता हुई। आपसे भेंट हो जाने की मुझे बड़ी ख़ुशी है। तो तीनकौड़ी बाबू, आप कवि हैं?

"जी नहीं"—कहकर तीनकौड़ी हसने लगा।

"आपने ही 'गुञ्जार' नामक पुस्तक लिखी है?"

तीनकौड़ी ने कुछ लज्जित होकर कहा—इससे किस प्रकार मुकर सकता हूँ?

तिवारीजी—इन्कार कैसे कीजिएगा? मेरे पास समालोचना के लिए एक प्रति आई है। मैंने आपकी पुस्तक पढ़ी है। पुस्तक मुझे तो अच्छी मालूम हुई। आजकल जो लोग कविता लिखते हैं, उसमें शब्दाडम्बर ही अधिक होता है, भाव की झलक नहीं रहती। किन्तु आपकी कविता में भाव है—भाव की मात्रा ख़ूब है।

इस भरी सभा में, हज़ारों आदमियों के आगे, सुविख्यात 'आद्याशक्ति' के प्रवीण सम्पादक के मुँह से ऐसी प्रशंसा सुनकर तीनकौड़ी को हर्ष के मारे रोमाञ्च हो आया। भरे हुए गले से उसने कहा—मेरी तो मामूली तुकबन्दी है—आपको पसन्द आ गई, यह जानकर मुझे विशेष हर्ष हुआ।

तिवारीजी—अगले महीने 'आद्याशक्ति' में समालोचना निकलेगी।

तीनकौड़ी ने एकाएक राजेन्द्र की ओर देखा, उसका मुँह सफ़ेद हो गया है।

एक-आध अन्य बात करके तीनकौड़ी ने कहा—तिवारी जी महाराज, तो आपने राजेन्द्र बाबू की पुस्तक भी पढ़ी होगी। वह भी आपके पास समालोचनार्थ भेजी गई है।

"राजेन्द्र बाबू की पुस्तक! इन्हीं की?"

"जी हाँ। इन्होंने 'प्रसूनाञ्जलि' नाम की एक पुस्तक छपाई है।"

तिवारीजी ने ज़रा सोचकर कहा—मालूम नहीं, याद नहीं आती। अच्छा ढूँढूँगा।

तीनकौड़ी—मेरी कविता की अपेक्षा इनकी कविता उच्च श्रेणी की होती है।—इनकी रचना देखकर ही एक प्रकार से मैंने लिखना सीखा है।

"अच्छा!—क्या कहा?—अच्छा मैं देखूँगा।—पुस्तक का क्या नाम बताया-कुसुमाञ्जलि?"

"जी नहीं, प्रसूनाञ्जलि।"

"बहुत अच्छा। हाँ तीनकौड़ी बाबू—किसी मासिक-पत्र में आपकी कविता नहीं देखी।"

तीनकौड़ी—जी नहीं, मैं मासिकपत्रों में नहीं भेजता।

"क्यों नहीं भेजते?—भेजना चाहिए।—मासिकपत्रों में लेख-कविता प्रकाशित होने से, अत्यल्प समय में ही, बहुत लोग उसे पढ़ते हैं। यदि हमारी 'आद्याशक्ति' में आपकी

कविता प्रकाशित हो तो, एक ही सप्ताह में, कम से कम दस हज़ार आदमी उसे देखेंगे। और यदि आप कविता-पुस्तक छपावें—तो उस पुस्तक को हज़ार मनुष्यों की नज़र से गुज़रने में बोलिए कितने वर्ष लगेंगे?"

तीनकौड़ी ने हँसकर कहा—दो-तीन पुश्तों से कम नहीं, यदि उतने दिनों तक हमारी पुस्तक बनी रहे।

तिवारीजी—तो फिर?—आप हमारी आद्याशक्ति में लिखा कीजिए। ख़ूब बढ़िया दस-पाँच कविताएँ—चुनी हुईं समझ गये न—आप भेज सकेंगे? आपकी कितनी अप्रकाशित कविताएँ मौजूद हैं?

"बहुतेरी पड़ी हैं—इतनी कि तीन महीने तक आपकी आद्याशक्ति यदि अन्य 'मैटर' न छापे और विज्ञापन भी न ले तो कहीं चुकें।"—यह कहकर तीनकौड़ी हँसने लगा।

"अच्छी बात है—भेजिएगा। ज़्यादह नहीं, दस-पाँच भेजिए। सब एक ही महीने की संख्या में न छापूँगा—किसी महीने में एक, किसी में दो—समझ गये न। तो भेजिएगा न?"

"बहुत अच्छा, भेज दूँगा।"

"आद्याशक्ति के दो फ़ार्म अभी छपने को हैं। यदि कल-परसों तक आप भेज दें तो इसी संख्या में आपकी दो-एक कविताएँ छप सकती हैं।—कहिए, भेजिएगा?"

"ज़रूर। मैं कल ही एक दर्जन कविताएँ आपके पास भेज दूँगा।"

"आप 'आद्याशक्ति' के ग्राहक हैं ?"

"जी नहीं।"

"अच्छा—अब हम आपका नाम लेखकों की फ़ेहरिस्त में लिख लेंगे। कविता भेजते समय अपना पता-ठिकाना भी लिखने की कृपा कीजिएगा।"

"बहुत अच्छा।"

इसी समय शब्द हुआ—ब्राह्मण लोग कृपा करें।

"अच्छा तो यही बात रही।"—यह कहकर तिवारीजी खड़े होकर अपना जोड़ा खोजने लगे।—ज्योंही वे उधर गये त्योंही तीनकौड़ो ने राजेन्द्र से कहा—बहुत भले आदमी हैं—क्यों न ?

राजेन्द्र ने सूखी हँसी के साथ कहा—हाँ।

"मासिकपत्र में लेख छपाने के सम्बन्ध में उन्होंने जो राय प्रकट की वह मालूम तो ठीक पड़ती है। थोड़े ही समय में दूर-दूर तक लेख पहुँच जाता है!"

राजेन्द्र ने दूसरी ओर मुँह करके कहा—हाँ।

"देखो भैया, पहले हम लोग समझते थे कि मासिकपत्रों के सम्पादक काव्य का विचार करने में बछिया के ताऊ होते हैं—किन्तु वह बात नहीं है। तुम्हारी क्या राय है ?"

राजेन्द्र ने कोरी "हाँ" कर दी।

"आद्याशक्ति ने आजकल ख़ूब नाम पैदा कर लिया है। और कृष्णपक्ष की ठीक प्रतिपदा को प्रकाशित हो जाती है—यही उसकी बहादुरी है, क्यों न ?"

राजेन्द्र ने किसी प्रकार कष्ट से 'हाँ' कहा।

इसी समय शब्द हुआ—कायस्थ और वैद्य महाशय पधारें।

तब राजेन्द्र और तीनकौड़ी उठकर सबके साथ भोजन-स्थान की ओर गये।

४

मेघोदय

दोनों की मित्रता के निर्मल आकाश में इस प्रकार एक बादल के टुकड़े का सञ्चार हुआ।

तीनकौड़ी समझ गया कि राजेन्द्र का मन मेरी तरफ़ से और का और हो गया है। प्रकट रूप से कोई बात नहीं हुई। तीनकौड़ी ने मन में कहा,—यह तो बड़ा ज़ुल्म है! मेरी रचना को यदि लोग अच्छी कहते हैं—तो उसे इतना असन्तोष क्यों होता है? उसकी रचना की यदि दस लोग प्रशंसा करें तो उससे मुझे प्रसन्नता ही होगी।

प्रतिदिन सन्ध्या-समय तीनकौड़ी जिस प्रकार राजेन्द्र के घर जाया करता था वैसा ही जाता-आता रहा। जिस प्रकार गप-शप हुआ करती थी वैसी ही होती रही। किन्तु पहले जिस तरह दोनों के बीच दिल खोलकर हँसना-खेलना होता था वैसा अब नहीं होता—मन और के और हो गये हैं।

तीनकौड़ी मन ही मन आशा करने लगा कि यदि 'आद्याशक्ति' में दोनों की पुस्तकों की अनुकूल आलोचना साथ ही साथ प्रकाशित हो जाय तो फिर राजेन्द्र के मन में कोई मैल न रह जायगा—बादल उड़ जावेगा। इसमें भी तो अब विलम्ब नहीं; आज द्वादशी है, तीन ही दिन की कसर है।

द्वितीया को ९ बजे की डाक से 'आद्याशक्ति' आई। तीनकौड़ी ने ऊपर का कागज़ (रैपर) फाड़कर देखा, सर्वनाश हो गया है। अन्त की ओर उसकी एक कविता छपी है, 'गुञ्जार' की लगभग एक कालम में समालोचना है। 'प्रसूनाञ्जलि' की समालोचना में सिर्फ़ इतना ही लिखा है—इन 'फूलों' में न तो रूप है और न सुगन्ध।

पढ़कर तीनकौड़ी सिर पकड़कर बैठ रहा।

सोचने लगा—यह देखकर राजेन्द्र एकदम मर्माहत हो जायगा। उसका जैसा रुख़ है, उससे अब वह किसी तरह मुझे क्षमा न करेगा। यह क्या हो गया! इससे तो यही अच्छा था कि हम दोनों की पुस्तकों की प्रतिकूल समालोचना ही प्रकाशित होती।

'गुञ्जार' की समालोचना को तीनकौड़ी ने दुबारा पढ़ा। विवाह की मजलिस में सम्पादक महाशय ने जिन प्रशंसा-वाक्यों का उच्चारण किया था—उनमें से कई इस लेख-बद्ध समालोचना में ज्यों के त्यों हैं। समालोचक ने कई पद्य उद्धृत करके भाव की सुन्दरता दिखलाई है। समालोचना पढ़ते-पढ़ते

उस पर पुष्पवृष्टि-सी होने लगी—किन्तु यह पुष्प-वृष्टि मानों काँटों से क्षतविक्षत देह पर हुई।

हाथ में पत्रिका लिये मोहाविष्ट. लोचनों से तीनकौड़ी सोचने लगा। कुछ समय इस प्रकार बीता था कि उसकी स्त्री दरवाज़े के पास खड़ी होकर बोली—क्यों जी—अभी तक नहाया नहीं, दफ्तर का समय जो हो गया!

उस शब्द से चौंककर तीनकौड़ी ने कहा—अयँ—क्या कहा ?

कमरे में आकर किरण ने कहा—बैठे-बैठे क्या सोच रहे थे ?—यह क्या लिये हो ?

"आद्याशक्ति।"

"आ गई ?—समालोचना है ?—बताना भला!"—यह कहकर उसने स्वामी के हाथ से पत्रिका एक प्रकार से छीन ली।

"देख लो" कहकर तीनकौड़ी स्नान करने गया।

तीनकौड़ी भोजन करने बैठ गया। पंखे से हवा करते-करते किरण कहने लगी—लो इस पर रूठना वृथा है,—यह समालोचना कुछ तुमने तो लिख नहीं दी है। उन्हें जो किताब अच्छी लगी—उसे अच्छा लिख दिया है; जो पसन्द नहीं आई, उसके लिए वैसा लिख दिया। भला इसमें तुम्हारा क्या अपराध ?

तीनकौड़ी ने विषण्णभाव से कहा—इस बात को अगर वह सोचता तो फिर चिन्ता ही किस बात की थी ?

आफ़िस में दिन भर तीनकौड़ी का चित्त स्थिर न रहा। शाम को राजेन्द्र के घर जाकर कैसे खड़ा हूँगा—क्या कहकर उसे समझाऊँगा? उसने मन में निश्चय कर लिया, कह दूँगा—"मासिकपत्रों के सम्पादक काव्य का विचार करने में बिलकुल असमर्थ होते हैं—ये दोनों समालोचनाएँ इसका उत्कृष्ट प्रमाण हैं। और, इन लोगों की अनुकूल या प्रतिकूल समालोचनाओं से बनता-बिगड़ता ही क्या है? अच्छी चीज़ का आदर सर्वसाधारण में होगा ही—मासिकपत्रों की आलोचना से सर्वसाधारण कुछ धोखे में न आ जायँगे।"—इत्यादि इत्यादि—किन्तु तीनकौड़ी के मन में किसी प्रकार सन्तोष न हुआ। बातचीत का यह पचड़ा उसे पसन्द न आया।

शाम को तीनकौड़ी घर आया। हाथ-मुँह धोकर और कुछ नाश्ता करके भाराक्रान्त हृदय से वह धीरे-धीरे राजेन्द्र के घर की ओर चला।

वहाँ पहुँचने पर दरबान से मालूम हुआ कि आज बाबू दो बजे की 'पैसेञ्जर' गाड़ी से—अपनी ज़मींदारी—सुन्दर-गञ्ज को गये हैं।—मालूम नहीं, कब तक लौटेंगे।

मित्र के सहसा अन्तर्द्धान होने के कारण को तीनकौड़ी समझ गया,—समझकर उसने ठण्ढी साँस ली। धीरे-धीरे घर लौटकर वह चुपचाप बिस्तरे पर लेट रहा।

स्त्री जब पास आई तब कहा कि आज कुछ न खाऊँगा—सिर में बड़ा दर्द है।

५

समालोचना और सम्पादक

एक सप्ताह बीत गया—राजेन्द्र की कुछ भी ख़बर नहीं मिली। तीनकौड़ी बीच-बीच में उसके घर पूछ आता है—"बाबू कब तक लौटेंगे, कुछ ख़बर आई है?"—उत्तर मिलता है—कुछ भी समाचार नहीं आये।

लौटने में जब राजेन्द्र को इतना विलम्ब हो रहा है—तब उसे एक चिट्ठी लिखनी चाहिए। यह सोचकर तीनकौड़ी कागज़-कलम लेकर चिट्ठी लिखने बैठा। पहले और-और बातें लिखकर अपना दस्तख़त किया और फिर 'पुनश्च' लिखकर लिखा—"आद्याशक्ति की वह समालोचना तुमने देखी होगी। वह समालोचना नितान्त अनाड़ी की भाँति लिखी गई है, उसका कुछ मूल्य नहीं।"

एक सप्ताह और बीत गया—किन्तु कुछ उत्तर नहीं आया।

एक दिन शाम को दफ़्तर से लौटने पर तीनकौड़ी ने देखा कि 'वङ्गप्रभा' आई है। प्रसूनाञ्जलि की कैसी समालोचना हुई है? देखने के लिए उसने आग्रह के साथ रैपर खोला; कई पुस्तकों की आलोचना है—पर प्रसूनाञ्जलि का नाम तक नहीं।

तीनकौड़ी को मालूम है कि राजेन्द्र की डाक, पता बदल कर, सुन्दरगञ्ज भेजी जाती है; दो-एक दिन में ही "वङ्ग-प्रभा" की नई संख्या उसे मिलेगी। उसे फिर नई चोट लगेगी।

इसी बीच और भी तीन पत्रों में तीनकौड़ी की पुस्तक की प्रशंसा प्रकाशित हो चुकी। इनमें केवल एक पत्र में प्रसूनाञ्जलि का उल्लेख है; समालोचना में इतना ही लिखा है—"यह एक मामूली कविता-पुस्तक है।"—तीनकौड़ी जानता था कि राजेन्द्र इस पत्र का ग्राहक नहीं है; अतएव वह आशा करने लगा कि यह राजेन्द्र की दृष्टि से बच जावेगा।

लगातार पत्रों में अनुकूल समालोचना का प्रकाशन होने से तीनकौड़ी के भक्तों का एक दल बन गया; ये लोग प्रतिदिन शाम को तीनकौड़ी की बैठक में आकर उसे घेर लेते थे। पाँच-छः दिन में तीनकौड़ी की डिब्बे भर चाय समाप्त होने लगी।

इनमें शरदिन्दु ही वास्तव में समझदार आदमी था। उम्र में वह तीनकौड़ी की अपेक्षा छोटा है—किन्तु एक-एक ऐसी बात कहता था कि तीनकौड़ी अचम्भे में आ जाता था। अँगरेज़ी का और संस्कृत का काव्य-साहित्य उसका भली भाँति देखा हुआ था। वह प्रायः आकर पूछता—"तीनकौड़ी बाबू, कुछ और नया लिखा?" यदि कुछ नवीन रचना मिल जाती तो वह बड़े आग्रह के साथ पढ़ता और प्रायः यथेष्ट बड़ाई किया करता था। यह था तीनकौड़ी का चक्षुष्मान् भक्त। एक और अन्धभक्त था—नाम था विहारीलाल। वह पटलडाँगे के एक छापेख़ाने में था तो प्रिण्टर, पर उसने भाषा-काव्य ख़ूब पढ़ा था। तीनकौड़ी की किसी कविता में उसे बाल बराबर भी दोष न देख पड़ता था। यदि कोई कुछ

दोष निकालता तो विहारी कमर कसकर उससे बहस करता था। वह तीनकौड़ी के घर के समीप ही रहता था। 'गुञ्जार' की प्रायः सभी कविताएँ उसे याद थीं। उसकी राय है, रवि बाबू के पश्चात् वङ्ग-देश में केवल एक कवि ने जन्म ग्रहण किया है—वह है तीनकौड़ी।

पूरा महीना बीत गया। राजेन्द्र का कुछ समाचार नहीं मिला। सुन्दरगंज को तो वह पहले भी बीच-बीच में जाया करता था—किन्तु इतने दिनों तक वहाँ ठहरता न था; दो-तीन दिन का अन्तर देकर तीनकौड़ी को पत्र भी लिखता था। धीरे-धीरे तीनकौड़ी एक दुर्भावना में पड़ गया।

नई "आद्याशक्ति" आई है—इस संख्या में तीनकौड़ी की दो कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। एक तो बिलकुल प्रथम पृष्ठ पर ही है। अब 'वङ्ग-प्रभा' के सम्पादक ने भी कविता भेजने के लिए तीनकौड़ी को पत्र लिखा है।

यश का आस्वादन पाकर मित्र-विच्छेद-दुःख को तीनकौड़ी बहुत कुछ भूल गया। उसके भक्त लोग उसको लगातार उत्तेजित कर कहने लगे कि एक कविता-पुस्तक और छपाइए। द्रव्य के अभाव की बात पर विहारीलाल ने कहा—आप हमारे प्रेस में छपाइए—मैं मैनेजर से कह दूँगा कि छपाई के रुपये मेरी तनख्वाह में से हर महीने वसूल कर लिया कीजिए। मैं इस तरह छपाई अदा कर दूँगा। पुस्तक बिकने पर जब आपके पास रुपया हो जाय तब मुझे दे दीजिएगा।

तीनकौड़ी—तुम तो कुल चालीस रुपये पाते हो—हर महीने दस रुपये निकल जाने पर आख़िर तुम्हारी गुज़र किस तरह होगी ?

बिहारी ने बड़े उत्साह के साथ कहा—किसी तरह गुज़र कर लूँगा।

इसी प्रकार कुछ दिन निकल गये। एक दिन, दफ़्तर के एक बाबू के हाथ में "रत्नाकर" मासिकपत्र देखकर तीनकौड़ी ने देखने को ले लिया।

पन्ने उलट-पलटकर अन्त की ओर देखा—प्रसूनाञ्जलि की समालोचना है। बढ़िया अनुकूल समालोचना है। तीनकौड़ी को जान पड़ा कि प्रशंसा ज़रा मर्यादा को लाँघ गई है। उसने सोचा, कुछ भी हो—यह राजेन्द्र के वेदनातुर हृदय को कुछ परिमाण में स्वास्थ्य प्रदान करेगी।

तीनकौड़ी ने पूछा—बाबू साहब, आपको यह पत्र कब मिला ?

"आज ही। दफ़्तर आते समय, मार्ग में उसके कार्यालय से, लेता आया हूँ।"

"कृपा करके यह पत्र मुझे दे दीजिए—मेरा विशेष प्रयोजन है। मैं कल आपको दूसरा ला दूँगा।"

"अच्छी बात है, ले लीजिए।"

"आज 'रत्नाकर' डाकघर से रवाना होकर कल सबेरे राजेन्द्र के कलकत्तेवाले घर पहुँचेगा। वहाँ से, पता बदल-

कर भेजने पर, परसों ज़मींदारी में पहुँचकर उसे मिलेगा। इसे मैं आज ही भेजे देता हूँ—राजेन्द्र को एक दिन पहले मिल जायगा। विक्षत हृदय होकर आज वह मेरे लिए ही गृह-त्यागी है—मेरे हाथ से उसकी यह शुश्रूषा तो हो जाय।"—यह सोचकर, उच्छ्वसित भाषा में आनन्द प्रकट करके तीनकौड़ी ने अपने मित्र को एक पत्र लिखा—'रत्नाकर' भी भेज दिया।

शाम को दफ़्तर से छुट्टी पाकर तीनकौड़ी उन बाबू साहब के लिए 'रत्नाकर' की एक प्रति लेने को, घर लौटते समय, उक्त पत्र के दफ़्तर में गया। उस समय मैनेजर साहब कुल 'रत्नाकर' की कापियाँ डिस्पेच करके, थके हुए शरीर को कुर्सी पर झुलाये हुए, सुख से धूम्र-पान कर रहे थे।

तीनकौड़ी ने पहुँचकर पत्र की एक प्रति माँगी।

मैनेजर—बैठिए साहब, देता हूँ।

समीप पड़ी हुई बेञ्च पर तीनकौड़ी बैठ गया।

मैनेजर—आपका शुभ नाम ?

"श्री तीनकौड़ी दास विश्वास।"

इसी समय एक बाबू ने भीतरवाले दरवाज़े से सिर निकाल-कर पूछा—मैनेजर साहब—सुन्दरगञ्ज की प्रतियाँ भेज दी गईं न ?—देखिए, कहीं भूल न जाइएगा।

मैनेजर—भेज दीं। भूला नहीं।

सुन्दरगञ्ज का नाम सुनकर तीनकौड़ी अपने कौतूहल का दमन न कर सका; वह मैनेजर से पूछ ही बैठा—मैं

सुन्दरगञ्ज को जानता हूँ, वहाँ आपका पत्र किन-किन के यहाँ जाता है ?

मैनेजर—ग्राहक ?—वहाँ ग्राहक तो कोई नहीं है।

"तो फिर—अभी उन्होंने सुन्दरगञ्ज में प्रतियाँ भेजने की बात पूछी है न ?"

मैनेजर ने चुरुट पीते-पीते कहा,—वहाँ तो स्वयं मालिक ही हैं—सम्पादक महाशय।

तीनकौड़ी भली भाँति जानता था कि ऐसी बातें पूछना उसके लिए सर्वथा अनधिकार-चर्चा करना है: किन्तु उसके दुर्निवार कौतूहल ने कर्तव्य-बुद्धि को विपर्यस्त कर डाला। इसी से उसने फिर पूछा—भला सम्पादक महाशय वहाँ, देहात में, क्या करते हैं ?

"हवा बदलते हैं। पद्मा के किनारे ही वहाँ के ज़मींदार राजेन्द्र बाबू का सुन्दर महल है—वहीं ठहरे हैं।"

"और किस-किस के नाम प्रतियाँ भेजी गई हैं ?"

"सम्पादकजी के भतीजे—करुणा बाबू के नाम।—वे आजकल वहाँ कारिन्दा हो गये हैं। और एक प्रति गई है राजेन्द्र बाबू के नाम।"

मैनेजर महाशय के चुरुट की पूर्णाहुति हो गई। उठकर उन्होंने आलमारी में से 'रत्नाकर' की एक प्रति निकालकर तीनकौड़ी को दी और कहा—यह लीजिए—दो आना मूल्य है।

६

कविता का नमूना

तीनकौड़ी जिसकी बहुत आकाङ्क्षा कर रहा था वह पत्र सप्ताह बीतने पर आया। पोस्टकार्ड अतिसंक्षिप्त भाषा में लिखा गया था—

"भाई तीनकौड़ी,

तुम्हारे दो पत्र आ चुके हैं। आज एक पत्र और माघ का 'रत्नाकर' मिला। इसके लिए अनेक धन्यवाद। अनेक कामों की झंझट के मारे पत्र आदि लिखने के लिए अवकाश नहीं मिला। जो हो, अगले बुधवार को कलकत्ते लौट आऊँगा। भेंट होने पर सब बातें होंगी।

तुम्हारा स्नेही
राजेन्द्र।"

दिन गिनते-गिनते अन्त में बुधवार आया। दफ़्तर से लौटकर झटपट हाथ-मुँह धोया, और कपड़े बदलकर तीनकौड़ी बाहर निकलने को उद्यत हुआ।

किरण ने कहा—चाय के लिए पानी गरम हो रहा है।

"चाय वहीं पीऊँगा।"

"नौकरनी नाश्ता लेने के लिए गई है; आती ही होगी। कम से कम नाश्ता तो किये जाओ।"

"नहीं, नाश्ता भी वहीं करूँगा"—यह कहकर तीनकौड़ी चलता बना।

राजेन्द्र के घर पहुँचकर देखा—दरवाज़े पर उसकी गाड़ी जुती खड़ी है। ऊपर जाकर देखा तो बैठक में सन्नाटा छा रहा है। दो-एक मिनट में, सज-धजकर, राजेन्द्र बैठक में आया।

तीनकौड़ी ने पूछा—क्या कहीं जा रहे हो?

"हाँ।—कहो, अच्छी तरह तो हो?"

"हाँ, अच्छा हूँ।—कहाँ जाते हो?"

"एक जगह न्यौता है।"

"कहाँ?"

राजेन्द्र ने ज़रा टाल-मटोल करके कहा—कृष्णविहारी बाबू के घर।

"कौन-से कृष्णविहारी बाबू?"

राजेन्द्र ने इसी समय अपने पाकेट से घड़ी और चेन निकालकर कहा—अरे, हमारी सोने की घड़ी और गार्डचेन तो ले आ।

तीनकौड़ी ने फिर पूछा—कौन-से कृष्णविहारी बाबू?

राजेन्द्र अनमना होकर बोला—अयँ?—वही तो—क्या कहते हैं 'रत्नाकर' पत्र के सम्पादक कृष्णविहारी बाबू।

दोनों के परिचित मित्रों के नामों को दोनों ही भली भाँति जानते थे। इसी से, तीनकौड़ी ने पूछा—इनसे कब जान-पहचान हो गई?

राजेन्द्र ने तनिक विरक्त होकर कहा—बहुत दिन नहीं हुए।

इसी समय नौकर सोने की घड़ी और गार्डचेन ले आया। उसे गले में धारण कर राजेन्द्र तनिक टालमटोल करने लगा।

तीनकौड़ी ने कहा—न हो तो ज़रा ठहरकर ही चले जाना। अभी तो साढ़े-सात ही बजे हैं; इसी बीच वहाँ तुम्हारा पुलाव ठण्डा थोड़े हुआ जाता है! बैठो।

"बैठ जाऊँ?—अच्छा—" कहकर राजेन्द्र बैठ गया। एक मिनिट—दो मिनिट—तीन मिनिट—दोनों ही चुप हैं। तीनकौड़ी बीच-बीच में मित्र की ओर देखता है—उस दृष्टि में विषाद और आमोद समभाव से मिश्रित है। परन्तु राजेन्द्र का भाव कुछ और है, वह धीरे-धीरे उकताहट प्रकट करने लगा।

उसका यह हाल देखकर तीनकौड़ी ने कहा—अच्छा, तो अब चलता हूँ। तुम्हें और विलम्ब न होने दूँगा।

राजेन्द्र मानो बच गया। तीनकौड़ी के खड़े होने से पहले ही उठ खड़ा हुआ। उसने कहा—"चले? अच्छा कल फिर मिलेंगे।" यह कहकर दोनों ज़ीने से उतर गये। राजेन्द्र बिना कुछ कहे-सुने गाड़ी में जा बैठा।

तीनकौड़ी, हृदय में एक भारी बोझा लेकर, धीरे-धीरे अपने घर लौट आया। वह अपनी स्त्री से नहीं कह सका कि न तो मैंने चाय पी है और न नाश्ता ही किया है।

दूसरे दिन शाम को तीनकौड़ी के घर भक्त-समागम हुआ। उनके साथ बैठकर वह बातचीत करने लगा।—पहले किसी

दिन यदि शाम को राजेन्द्र के घर पहुँचने में तीनकौड़ी को विलम्ब हो जाता तो वह बुलाने के लिए दरबान भेज देता था। तीनकौड़ी के मन में—सम्पूर्ण न सही किन्तु—किञ्चित् मात्र आशा जाग्रत् थी, शायद अभी राजेन्द्र का दरबान बुलाने को आवेगा!—रात के नौ बज गये, कोई नहीं आया।

दूसरे दिन सन्ध्या के अनन्तर, उपयाचक बनकर तीनकौड़ी राजेन्द्रनाथ के घर पहुँचा। उस समय राजेन्द्र अकेला बैठा-बैठा समाचार-पत्र पढ़ रहा था। तीनकौड़ी को देखकर बोला—आओ—कल नहीं आये?

तीनकौड़ी ने बैठकर कहा—कल कई आदमी आ गये थे—वे रात को साढ़े-नौ बजे तक बैठे रहे; इसी से नहीं आ सका।

"अच्छा"—कहकर राजेन्द्र ने फिर समाचार-पत्र पढ़ने में मन लगाया।

कुछ देर में अख़बार अलग रखकर राजेन्द्र ने कहा—रामधनियाँ, दो प्याले चाय तो ले आ।

तीनकौड़ी ने पूछा—हाँ, उस दिन कृष्णविहारी बाबू के यहाँ और किन-किन का निमन्त्रण था?

"बहुत लोग थे। उपन्यास-लेखक गोवर्द्धन बाबू, कवि श्यामाकान्त, इसके सिवा तुम्हारी 'आद्याशक्ति' के सम्पादक तिवारीजी, 'वङ्ग-प्रभा' के गौरीशङ्कर उपाध्याय—और भी कई लोग थे।"

"अच्छा तो यह कहो कि बढ़िया साहित्यिकों की मजलिस थी !"

"हाँ !"

तीनकौड़ी ने बड़ा ज़ोर लगाया, पर बातचीत का सिल-सिला अच्छा न जमा। चाय पीकर तीनकौड़ी कुछ देर बैठा रहा, फिर चला आया।

अब तीनकौड़ी प्रतिदिन राजेन्द्र के घर नहीं जाता। दो-चार दिन का नागा करके जाता है। दोनों में मौखिक शिष्टाचार मात्र रह गया, अब वह ज़िगरी दोस्ती नहीं है।

तीनकौड़ी ने देखा कि राजेन्द्र के भी कई एक भक्त हो गये हैं। वे लोग प्रायः उसकी बैठक में जमकर, 'प्रसूना-ञ्जलि' की एवं 'रत्नाकर' में प्रकाशित उसकी नई-नई कविताओं की प्रशंसा किया करते हैं।

एक दिन क्या देखा कि राजेन्द्र का प्रधान भक्त अधरचन्द्र बैठा है। दोनों के बीच जो बातचीत हो रही थी वह तीन-कौड़ी को देखते ही बन्द हो गई।

एक दिन और देखा कि अधर के साथ बैठकर राजेन्द्र न जाने क्या कागज़-पत्र देख रहा था, तीनकौड़ी के वहाँ पहुँचते ही राजेन्द्र ने उन्हें समेटकर दराज़ में बन्द कर दिया।

यह लीला देखकर तीनकौड़ी ने उसके घर का आना-जाना और भी घटा दिया। किसी सप्ताह में दो-एक बार जाता है—किसी में बिलकुल नहीं।

एक दिन रविवार को सबेरे आठ बजे जाकर तीनकौड़ी ने देखा, अधरचन्द्र और अन्यान्य भक्तगण राजेन्द्र को घेरे बैठे हैं। तीनकौड़ी पर नज़र पड़ते ही अधर बाबू ने कहा—आइए, आजकल तो आपके दर्शन ही नहीं मिलते!

तीनकौड़ी ने बैठकर देखा, टेबिल पर नया 'रत्नाकर' पड़ा है। 'इसी महीने का है?'—कहकर उसने पत्र उठा लिया।

"रत्नाकर" में हर महीने मासिकपत्रों की समालोचना प्रकाशित होती है। यही समालोचनाएँ छोटे-बड़े अनेक लेखकों के लिए बिभीषिकाएँ हैं। पत्र खोलकर तीनकौड़ी पहले मासिकपत्रों की समालोचना ही पढ़ने लगा। देखा कि सम्पादक ने समालोचना की तीक्ष्ण छुरी से, पिछले महीने की "आद्याशक्ति" में प्रकाशित उसकी एक कविता के खण्ड-खण्ड करके उसके ऊपर चिढ़ का विष बरसाया है। पढ़ चुकने पर तीनकौड़ी ने क्या देखा कि राजेन्द्र और अधरचन्द्र परस्पर मुँह देखकर गुप्त रूप से हास्य कर रहे हैं।

पकड़े जाने पर, अधर ने ज़रा अप्रतिभ होकर कहा—तीनकौड़ी बाबू, वह क्या पढ़ते हो! इस संख्या में राजेन्द्र बाबू की जो 'झँझरी-नैया' कविता प्रकाशित हुई है उसे पढ़ो।

तीनकौड़ी उसे ढूँढ़कर मन ही मन पढ़ने लगा। जब तक वह उस कविता को पढ़ता रहा तब तक अधरचन्द्र लगातार टकटकी लगाये उसके चेहरे को देखता रहा। पढ़ चुकने पर पूछा—कैसी है तीनकौड़ी बाबू?

दार है!—ओह—शरीर रोमाञ्चित हो जाता है! क्यों तीन-कौड़ी बाबू—आप तो बोलते ही नहीं?—यह कहकर उपहास के ढँग से अपने ओठ और दोनों नेत्र एकसाथ सञ्चालित करते-करते अधर तीनकौड़ी की ओर ताकने लगा।

तीनकौड़ी नीचे मुँह किये चुप्पी साधे बैठा रहा।

अधर कहने लगा—ख़ास कर यह तो बहुत ही सुन्दर बना है—"दिकरीगण चापड़ खो वदन-धमन में।" आँखों के आगे तसवीर-सी दीखने लगती है!

एक सभ्य ने पूछा—अधर बाबू, दिकरी का क्या मतलब है?

अधर—आप दिकरी का अर्थ नहीं जानते?—अजी यही कि जो दिक़ करें—छेड़-छाड़ करें;—कपड़ा दो, गहना दो, साबुन दो, एसेन्स दो—यह कहकर जो हमें नित्य दिक़ किया करें।

एक बाबू ने पूछा—स्त्रियाँ?

"जी हाँ—युवतियाँ। वे हम लोगों को देखो न कितना दिक़ करती हैं, इसी से उनका नाम दिकरी हुआ।"

राजेन्द्र ने कहा—अरे—यह क्या करते हो अधर! भाषा के साथ ऐसी दिल्लगी ठीक नहीं। वे तुम्हारी बात सच मान लेंगे। नहीं महाशय, अधर बाबू की बात आप न मानिए। दिकरी के मानी युवती तो है—पर है वह शुद्ध संस्कृत शब्द। कोष देखते ही समझ जाइएगा।

कुछ देर तक ऐसी बातें सुनकर तीनकौड़ी घर चला गया।

७

मित्रता की समाधि

लगभग एक महीने बाद, शनिवार को दो बजे तीनकौड़ी के दफ़्तर में छुट्टी हो गई। इससे प्रथम ख़ासी वर्षा हो गई थी। उस समय भी बूँदा-बाँदी हो रही थी। रास्ते के मोड़ पर तीनकौड़ी ट्राम के लिए खड़ा हो गया। दो-तीन ट्रामगाड़ियाँ निकलीं, परन्तु सब में घमासान भीड़ थी। अन्त में ऊबकर तीनकौड़ी ने यथासाध्य कपड़ों को समेट लिया और छतरी खोलकर पैदल ही घर का रास्ता लिया।

लाल बाज़ार के मोड़ पर आकर देखा, छोटे-बड़े लाल और नीले अक्षरों में छपा हुआ एक प्लेकार्ड चिपका है—

देश-प्रसिद्ध कवि

श्रीयुक्त राजेन्द्रनाथ वसु-प्रणीत

काव्यामृत के झरने की धारा

नवगीति

प्रकाशित हो गई। मूल्य सिर्फ़ १) रुपया

इस विज्ञापन ने मानो तीनकौड़ी की छाती में ज़ोर से घूँसा मार दिया। सोचा—यह क्या!—राजेन्द्र ने एक नई

किताब छपाई है—और मुझे अब तक उसकी खबर भी नहीं दी !—मैं राजेन्द्र के लिए यहाँ तक पराया हो गया !—क्यों ? मैंने ऐसा क्या अपराध किया है !

वहीं खड़े होकर, विज्ञापन पढ़ते-पढ़ते, तीनकौड़ी के नेत्र सजल हो आये। रास्ता चलनेवालों की भीड़ उसे पीछे से ढकेल रही है। वह खड़ा न रह सका—आगे चलने लगा।

जैसा-जैसा आगे चलने लगा, रास्ते के दोनों ओर वही प्लकार्ड मिलते गये। कलकत्ता नगरी को मानो किसी ने इस नव्य-काव्य का रामनामी दुपट्टा ओढ़ा दिया है।

जाते-जाते तीनकौड़ी बँगला-पुस्तकों की एक बड़ी दूकान के आगे पहुँचा। पाकेट में हाथ डालकर देखा—रुपया मौजूद है। दूकान में जाकर कहा—बाबू साहब, एक 'नव-गीति' दीजिए।

दूकान के कर्मचारी ने पुस्तक ला दी। मूल्य देकर तीन-कौड़ी ने पुस्तक हाथ में ली। देखा—बहुमूल्य नीले-रेशमी कपड़े की जिल्द पर सुनहरे अक्षर चमक रहे हैं। समर्पण-पत्र में लिखा है—"अभिन्नहृदय मित्र श्रीयुत अधरचन्द्र सेन के कर-कमलों में।" बढ़िया चमकीले कागज़ पर, अच्छी काली स्याही में, पाइका टाइप में कविताएँ छपी हैं; प्रत्येक पृष्ठ पर चारों ओर सुन्दर लाल बार्डर छापा गया है। मुखपत्र पर एक तिरङ्गा चित्र; भीतर आर्टपेपर पर कई सादे विचित्र चित्र हैं। जिस धूमधाम से छपाई और

जिल्दबन्दी की गई है उसके अनुसार प्रत्येक पुस्तक की लागत एक रुपये से अधिक ही होगी। पुस्तक का वाह्य-सौन्दर्य देखकर तीनकौड़ी की आँखें चैंधिया गईं।

घर पहुँचकर तीनकौड़ी ने टेबिल पर पुस्तक रख दी। कीचड़-भरे जूते उतारकर उसने गीले कपड़े बदले। इतने में माँ आ गई। उसने पुस्तक उठाकर कहा—यह क्या!—राजेन्द्र बाबू की पुस्तक है?

तीनकौड़ी—हाँ तो देख ही रही हो।

"वाह—है तो बढ़िया!—कब प्रकाशित हुई?"

"आज ही।"

पहले दो-तीन पृष्ठ खोलकर किरण ने पूछा—प्रणयोपहार—प्रियवन्धुवर को सादर भेंट—इस बार ऐसा कुछ नहीं लिखा?

अश्रु-रुद्ध-कण्ठ से तीनकौड़ी ने कहा—नहीं।

गत तीन-चार दिन से तीनकौड़ी राजेन्द्र के घर नहीं गया। ४ बजे के लगभग वर्षा रुक गई। आकाश भी निर्मल हो गया। तीनकौड़ी के मन में रह-रहकर इच्छा होने लगी—हो आऊँ।—फिर सोचा—जाने से क्या होगा? रात होने पर, अपनी सूनी बैठक में दिया-बत्ती जलाकर वह बैठा-बैठा "नवगीति" पढ़ने लगा।—प्राय: सारी कविताएँ इसकी पहले की पढ़ी हुई निकलीं। उस समय,—जब दोनों की मित्रता टूटी नहीं थी तब—राजेन्द्र की हस्तलिखित कापी में

ही अनेक कविताएँ तीनकौड़ी पढ़ चुका था, शेष कविताएँ "रत्नाकर" में देख ली हैं। कुछ नई कविताएँ भी हैं।

दोनों की मृत-मित्रता की सुसज्जित समाधि की भाँति तीनकौड़ी को वह पुस्तक जान पड़ने लगी।

थोड़ी देर में विहारीलाल ने आकर कहा—यहाँ अकेले बैठे क्या करते हो?

"आओ!—राजेन्द्र की नवगीति पढ़ता था"—कहकर तीनकौड़ी ने किताब नीचे रख दी।

विहारी ने तख़्त पर बैठकर कहा—अच्छा—रास्ते में प्लेकार्ड तो मैंने भी देखे थे। आपने तो मुझसे एक दिन भी नहीं कहा कि राजेन्द्र बाबू ने छपने के लिए पुस्तक भेज दी है।

"मैं स्वयं न जानता था।"

"आप भी न जानते थे!—आप क्या कहते हैं? आप लोगों की तो इतनी घनिष्ठता थी!"

तीनकौड़ी ने ज़रा विषाद की हँसी हँस दी।

पुस्तक उठाकर और भीतर का सफ़हा खोलकर विहारी ने कहा—अरे! लिखकर नहीं दी?

"यह पुस्तक उपहार की नहीं है।—मोल लाया हूँ।"

विहारी ने अचरज करके तीनकौड़ी की ओर देखकर कहा—मोल लाये हो? किस प्रकार?

तीनकौड़ी ने ज़रा चिढ़कर कहा—दूकान से मोल लाया हूँ, और किस प्रकार?

बिहारी लहमे भर के लिए अकचकाकर तीनकौड़ी के मुँह की ओर देखता रह गया। अन्त में बोला—अच्छा, अब समझ में आया।

इसी समय शरदिन्दु बाबू ने प्रवेशकर कहा—तीनकौड़ी बाबू हैं?—अच्छा, बिहारी भी आ गये।

तीनकौड़ी—आइए शरदिन्दु बाबू, बैठिए।

शरदिन्दु ने बैठकर कहा—देखता हूँ, नवगीति आ गई। वाह! जिल्द तो बढ़िया बँधवाई है!

बिहारी—बस, जिल्द ही जिल्द है। भीतर तो निरा कूड़ा भरा है।

शरदिन्दु—नहीं जी, तीनकौड़ी बाबू के सामने वह बात मत कहो। ये नाराज़ हो जायँगे।

"देख आऊँ, चाय बनी कि नहीं"—यह कहकर तीन-कौड़ी घर में चला गया।

बिहारी—शरदिन्दु, आजकल राजेन्द्र के साथ तीनकौड़ी की क्या वैसी घनिष्ठता नहीं है?

"क्यों? तुमको क्या यह बात आज मालूम हुई?"

"हाँ, मैंने तो पहले कुछ भी नहीं सुना!"

"देखो न, पहले तीनकौड़ी बाबू रोज़ शाम को राजेन्द्र के यहाँ जाते थे। अब तो भूले-भटके पहुँच जाते हैं। मैं तो राजेन्द्र के घर अक्सर जाता हूँ न—पहले भी जाता था, आजकल भी जाता हूँ। पहले तीनकौड़ी की प्रशंसा राजेन्द्र

को फीकी न लगती थी। आजकल जाकर सुनता हूँ, प्रायः तीनकौड़ी की रचना पर अधर और राजेन्द्र के बीच हँसी और कुचेष्टा हुआ करती है।"

विहारी जल उठा। उसने कहा—यह बात है?

"जी हाँ। 'रत्नाकर' में राजेन्द्र की कविता की वह समालोचना तो अधर ने ही लिखी है। अधर आजकल राजेन्द्र का महाभक्त बन गया है। राजेन्द्र को ख़ुश करने के लिए बेचारे को सूझ नहीं पड़ता कि तीनकौड़ी की किस प्रकार भद्द उड़ावे।"

विहारी ने दाँत पीसकर कहा—ओफ़, कैसी नीच प्रवृत्ति है! किन्तु देखो, आज तक तीनकौड़ी बाबू ने राजेन्द्र के विरुद्ध या उसकी कविता की निन्दा में, भूलकर भी एक बात तक नहीं की।

"चिढ़ जाते हैं—चिढ़ जाते हैं। उनके आगे राजेन्द्र की निन्दा करो तो तीनकौड़ी बाबू इस समय भी चिढ़ जाते हैं।"

"और तीनकौड़ी बाबू की रचना, राजेन्द्र की रचना की अपेक्षा कहीं बढ़कर है।"

"इसमें क्या सन्देह! तीनकौड़ी बाबू की रचना में ख़ासा कवित्व है, जिसको कि असली कवित्व कहते हैं। राजेन्द्र की कविता है कुछ दुर्बोध शब्दों का जोड़-तोड़।"

"सचमुच यही बात है। देखो, पुस्तक प्रकाशित हुई है, राजेन्द्र ने तीनकौड़ी बाबू को एक प्रति उपहार में भी नहीं

दी! वे एक रुपया खर्च कर, दूकान से ले आये हैं। अच्छा, बतलाओ ऐसा क्यों हुआ? दोनों में ऐसी गाढ़ी दोस्ती थी, एकाएक ऐसा क्यों हो गया?"

"क्योंकि तीनकौड़ी बाबू की पुस्तक की अच्छी समालोचना होने लगी, और राजेन्द्र की पुस्तक को किसी ने पूछा भी नहीं। इसी से ईर्षा की आग जल उठी।"

"नहीं जी, 'रत्नाकर' में तो प्रसूनाञ्जलि की बहुत बढ़िया समालोचना प्रकाशित हुई थी।"

शरदिन्दु ने हँसते-हँसते आँखें मटकाकर कहा—वह क्या यों ही प्रकाशित हो गई थी! राजेन्द्र अपनी ज़मींदारी में जा रहा था। रास्ते में स्टीमर पर 'रत्नाकर'-सम्पादक से मुलाक़ात हो गई। तब उन्हें राजेन्द्र अपने भवन में ले गया। ख़ूब ख़ातिरदारी की, पुलाव-कलिया खिलाया, और बिना ही ज़मानत लिये उनके भतीजे को गुमाश्तागिरी दे दी—तब कहीं समालोचना नसीब हुई है। इस समय भी सम्पादक महाशय के लिए सुन्दरगञ्ज से पीपे भर-भरकर घी आता है—बोरे भर-भरकर बढ़िया गोविन्दभोग चावल आते हैं, और न जाने क्या क्या आता है—तब कहीं यह ट्रैश् हर महीने 'रत्नाकर' में छापे जाते हैं—यों ही नहीं।

इसी समय तीनकौड़ी ने चाय के दो प्याले लाकर दोनों हाथों से दोनों को दिये। शरदिन्दु ने कहा—ओहो, आपने स्वयं कष्ट किया तीनकौड़ी बाबू!

तीनकौड़ी—इसमें कष्ट की क्या बात है? आप पियेंगे, इससे मुझे कष्ट होगा या सुख? नौकरनी को बुख़ार चढ़ा है।

"आपके लिए चाय कहाँ है?"

"लाता तो हूँ"—कहकर तीनकौड़ी फिर भीतर चला गया।

विहारी ने चाय पीते-पीते कहा—अफ़सोस, मैं लिखना नहीं जानता; नहीं तो इस 'नवगीति' की ऐसी समालोचना लिखता कि बचाजी को मज़ा मालूम होता। शरदिन्दु, तुम न लिखो।

"अजी राम कहो, हमें क्या घर-गृहस्थी का काम नहीं है?"

तीनकौड़ी अपने लिए चाय, और बीड़ों का डिब्बा हाथ में लिये बाहर आया। कुछ गप-शप होने के अनन्तर उस दिन के लिए सभा विसर्जित हुई।

८

भक्तों का मनाना

इसी बीच विलायत में रवि बाबू की विजय-दुन्दुभि बज गई। विलायत से तार-द्वारा समाचार आने लगा कि वहाँ के समझदारों ने बङ्गाल के कविवर के मस्तक पर प्रशंसा का पुष्प-चन्दन, और प्रकाशकों ने कवि के चरणों पर सुवर्णवृष्टि आरम्भ की है।

राजेन्द्र को घेरकर भक्तों ने कहना आरम्भ किया—आप रवि बाबू से किस बात में कम हैं? आप यदि अपनी 'नव-

गीति' का अनुवाद विलायत भेज दें तो आपका भी जयजय-कार हो जाय।

राजेन्द्र ने सोचा, बात झूठ नहीं है। किन्तु अनुवाद कौन कर देगा?—उसका अँगरेज़ी-ज्ञान तो काम दे न सकेगा।

अन्त में, बहुत परामर्श के पश्चात्, किसी ग़ैरसरकारी कालिज के प्रसिद्ध अध्यापक से अनुवाद करा लेना ही स्थिर हुआ। अध्यापक महाशय ने प्रचुर दक्षिणा के लोभ से यह काम कर देना स्वीकार कर लिया।

धीरे-धीरे अनुवाद होने लगा। क़ीमती पार्चमेण्ट काग़ज़ पर, एक अँगरेज़ के कारख़ाने में, पाण्डुलिपि का टाइप-राइटर में छपना आरम्भ हो गया। समाप्त होने पर राजेन्द्र ने उसे रजिस्ट्री-द्वारा मैकमिलन कम्पनी के पास भेज दिया। साथ ही पत्र भी भेज दिया।

"नवगीति" प्रकाशित हो जाने के समय से तीनकौड़ी ने राजेन्द्र के घर का आना-जाना छोड़ दिया है। यदि राजेन्द्र स्वयं तीनकौड़ी के घर आकर उसे "नवगीति" की एक प्रति उपहार में देता, तो हृदय धुल जाता—किन्तु राजेन्द्र ने इस परिश्रम को स्वीकार नहीं किया। उसने ख़बर भी नहीं ली कि तीनकौड़ी ज़िन्दा है या मर गया! यह सच है कि तीन-कौड़ी जाता नहीं था—किन्तु "नवगीति" के अनुवाद कराये जाने और विलायत भेजे जाने आदि की सब बातें उसे मालूम थीं; शरदिन्दु आकर चर्चा कर गया था। इसका क्या

परिणाम होता है? यह जानने के लिए तीनकौड़ी को कुछ उत्कण्ठा न हुई हो, सो बात नहीं।

इसी समय "रत्नाकर" में "नवगीति" की लम्बी-चौड़ी सचित्र समालोचना प्रकाशित हुई। चित्र फ़ोटोग्राफ़ से तैयार किया गया है, नीचे छपा है—"बङ्गाल के प्रतिभाशाली सुकवि श्रीयुक्त राजेन्द्रनाथ वसु।" सारी समालोचना और कुछ नहीं, राजेन्द्र और 'नवगीति' की एक प्रकार की स्तुति है। रवीन्द्र बाबू के बाद ही अत्यल्प अन्तर देकर उसे स्थान दिया गया है। तीनकौड़ी प्रभृति अन्यान्य नव्य कवियों की अपेक्षा राजेन्द्र बाबू की उच्चता दिखाने के लिए, दुर्भाग्य से प्रथमोक्त लोगों के काव्य से भी कुछ-कुछ उद्धृत किया जाकर समालोचना की गई है। समालोचक महाशय का आक्रोश तीनकौड़ी पर ही विशेष है। अफ़वाह है कि समालोचना के लेखक सम्पादक महाशय स्वयं हैं—तथापि स्थान-स्थान पर अधरचन्द्र बाबू का हाथ भी यथेष्ट है।

इस समालोचना को पढ़कर विहारीलाल तो एकदम पागल-सा हो गया। उसने कहा—लाठी मारकर मैं तो सम्पादक की खोपड़ी फोड़ दूँगा। फिर जो होगा, देख लूँगा।

शरदिन्दु—तीनकौड़ी बाबू के विरुद्ध जो अंश है वह सम्पादक का लिखा नहीं। सुना है कि वह राजेन्द्र की बैठक की उपज है; अधर का लिखा हुआ है।

विहारीलाल—तो मैं राजेन्द्र की खोपड़ी ही फोड़ूँगा।

विहारी दो-तीन दिन लाठी लिये सड़क पर चक्कर काटता रहा।—यह ख़बर पाकर तीनकौड़ी ने उसकी यथेष्ट भर्त्सना की तब कहीं वह रुका।

दूसरे दिन शरदिन्दु बाबू के घर जाकर विहारी बोला—मैंने एक पुस्तक लिखी है।

"कहते क्या हो! तुम भी ग्रन्थकार बन बैठे?"

"जब ऐरे-ग़ैरे सभी ग्रन्थकार बन गये तब मैं ही क्यों रह जाऊँ?"

"अच्छी बात है, छपवा डालो।"

"पागल हुए हो। इस देश में न छपाऊँगा। इस देश में गुण का कोई गाहक नहीं।"

"तो फिर?"

"एकदम विलायत में छपाऊँगा।"

शरदिन्दु ने हँसकर कहा—दुर् पागल!

विहारी—सच कहता हूँ, अनुवाद भी हो गया है। वह कौन कम्पनी है, ज़रा उसका पूरा पता तो लिख दो। विलायत में जान-पहचान का एक आदमी है, उसके पास कॉपी भेज दूँगा। लिख दूँगा कि उस कम्पनी में जाकर दे आना।

"विलायत में कौन है?"

"क्यों? सुबोध है न। वह मेरा लड़कपन का मित्र है। हाँ, उस कम्पनी का पता-ठिकाना बतला दो।"

शरदिन्दु ने पहले सोचा था कि विहारी मज़ाक़ कर रहा है। किन्तु उसका आग्रह देखकर अन्त में सोचा कि शायद तीनकौड़ी की पुस्तक का अनुवाद करा लिया है, और वही अनुवाद भेजना चाहता है। बातें बनाकर असल बात को छिपाना चाहता है। उसने पूछा—अच्छा बताओ, क्या भेजोगे? मैं क़सम खाकर कह सकता हूँ कि पुस्तक तुम्हारी नहीं है।

"पुस्तक किसी की भी हो—भैया, तुम पता बतला दो।"

शरदिन्दु ने कहा—पते की तो मुझे याद नहीं। हाँ, छः महीने हुए, मैकमिलन के दफ़्तर से मैंने एक दुष्प्राप्य पुस्तक मँगाई थी। ठहरो, ढूँढ़ता हूँ, शायद वहाँ की चिट्ठी मिल जाय।" कुछ देर ढूँढ़-ढाँढ़कर अन्त में बोला—यह लो, मिल गई। इस चिट्ठी में उसका नाम, पता सब कुछ है।

चिट्ठी लेकर विहारी हँसता-हँसता चला गया।

८

कवि-संवर्द्धना

सप्ताह पर सप्ताह बीतने लगे। विलायत से कुछ भी उत्तर नहीं आता। राजेन्द्रनाथ और उसकी भक्त-मण्डली बहुत ही उत्कण्ठित हो गई है। जो भक्त नहीं हैं, पर इस समाचार को जानते थे, वे कहने लगे—मैकमिलन कम्पनी क्या पागल हो गई है जो रविश छापेगी!

अन्त में एक दिन, रात के नौ बजे, पत्र ने दर्शन दिये। उस दिन शनिवार था। राजेन्द्र ने समाचार-पत्र में पढ़ा था कि शाम के बाद विलायती-डाक बँटने की सम्भावना है। भक्तों से घिर-कर उसने कम्पित हृदय से सन्ध्या के बाद के समय को प्रतीक्षा में बिताया। नौ बजने से कुछ मिनट पहले ही दरबान ने वह प्रत्याशित पत्र लाकर राजेन्द्र के सामने टेबिल पर रख दिया।

सभी ने झुककर देखा, विलायती पत्र जँचता है, विलायती टिकट लगा है।

राजेन्द्र के चेहरे की रङ्गत फीकी थी। उसने काँपते हुए हाथ से लिफ़ाफ़ा खोला। भक्त लोग टकटकी बाँधे उसके चेहरे को देखते रहे। पढ़कर "लो देख लो" कह-कर राजेन्द्र ने पत्र टेबिल पर रख दिया और आराम-कुर्सी पर लेटकर नेत्र मूँद लिये।

सभी भक्तों ने हाथ फैलाये, किन्तु अधर ने बड़ी फ़ुर्ती से उठाकर पत्र पढ़ा। फिर वह ख़ुशी के मारे उछलकर, "मार लिया है पड़ाव, मार लिया है पड़ाव" चिल्लाता हुआ कमरे भर में उन्मत्त की भाँति घूमने लगा।

अन्यान्य भक्त तब आनन्द के स्वर में पत्र पढ़ने लगे। राजेन्द्रनाथ ने आँखें खोलकर कहा—अधर, यह क्या करते हो? बैठो, बैठ जाओ।

"नहीं, मैं न बैठूँगा।"—कहकर अधर पहले की भाँति नृत्य करने लगा।

राजेन्द्र ने कहा—अजी अधर, सुनो।

नाचते-नाचते अधर ने कहा—क्या?

"इसी वक्त जाओ। सेकेण्ड क्लास की किराये की गाड़ी करके 'बङ्गाली' के आफ़िस में जाओ। यह चिट्ठी दिखलाकर कह आओ कि कल सबेरे ही एक 'पेरा' छप जाय।"

एक भक्त—सिर्फ़ 'बङ्गाली' के दफ़्तर में ही क्यों? इँग्लिशमैन, स्टेट्समैन, डेली-न्यूज़, मिरर और अमृतबाज़ार सभी को ख़बर देनी चाहिए।

यह सुनते ही अधर नृत्य बन्द करके खड़ा हो गया। "अच्छा लाओ" कहकर चिट्ठी ले वह जल्दी से बाहर चला गया।

दूसरे दिन नौ बजे से राजेन्द्रनाथ के घर लोगों का आना-जाना आरम्भ हो गया। अनेक इष्ट-मित्र आ-आकर आनन्द प्रकट करने लगे।—नहीं आया सिर्फ़ तीनकौड़ी।

उस वक्त तो पूरी मजलिस थी। अधर कहता था—राजेन्द्र बाबू यह न होगा! हम किसी तरह न मानेंगे।

अन्यान्य भक्त सम स्वर से बोल उठे—हर्गिज़ नहीं। इतने लोगों को क्या आप निराश करेंगे?

राजेन्द्र ने विनयसूचक मृदु हास्य करके कहा—कौन ऐसा शेर मारा है, जिसके लिए सभा करके धूमधाम के साथ मेरी संवर्द्धना करोगे? मामूली-सी बात—

अधर ने कहा—आपके लिए मामूली-सी हो सकती है, हम लोगों के लिए मामूली नहीं है। रवि बाबू ने विलायत

जाकर जो काम किया है—वह आपने यहीं,—श्यामपुकुर में-बैठे-बैठे एक पग भी न चलकर—कर डाला। बङ्गालियों के मुखड़े को आपने, बङ्गाल में ही रहकर, उज्ज्वल कर दिया है। बिना अभिनन्दन किये हम लोग किसी तरह न छोड़ेंगे। आपको राज़ी होना ही पड़ेगा।

बहुत उपरोध-अनुरोध और कहा-सुनी के पश्चात् अन्त में राजेन्द्रनाथ संवर्द्धना ग्रहण करने को राज़ी हुआ। भक्तों के हर्ष का क्या पूछना है।

अधर चटपट एक दल का सङ्गठन करके चन्दा उगाहने के लिए उद्योग करने लगा। अगले शनिवार की शाम को छः बजे संवर्द्धना होगी; सभापति का आसन ग्रहण करेंगे 'रत्नाकर'-सम्पादक कृष्णविहारी बाबू। समय बहुत थोड़ा है: इस बीच सारा बन्दोबस्त करना है। अभिनन्दन-पत्र लिखा गया, प्रेस में छपने को देने के प्रथम भक्त लोग उसे राजेन्द्र को दिखाने के लिए ले आये।

राजेन्द्र ने कहा—चन्दा कितना हुआ?

"देख न लीजिए"—कहकर राजेन्द्र के आगे चन्दे की फ़िहरिस्त खोलकर फैला दी गई।

राजेन्द्र ने नामों की जाँच करके कहा—देखता हूँ, तीन-कौड़ी ने भी चन्दा दिया है।

अधर बोला—किस लज्जा के मारे न देगा?

राजेन्द्र ने कहा—लज्जा की आशङ्का से नहीं दिया है; उसने तो अपनी उदारता दिखाने के लिए दिया है। किन्तु अन्दर ही अन्दर जल-भुन रहा होगा।

अभिनन्दन-पत्र को पढ़कर राजेन्द्र ने मञ्जूर कर लिया।

कार्नवालिस स्ट्रीट पर पान्ती के मैदान में संवर्द्धना-सभा का प्रबन्ध हुआ है। पत्तों और मालाओं से तोरण-द्वार सजाया गया है; ऊपर खिले हुए फूलों से अक्षर बनाकर लिखा गया है "कवि राजेन्द्र की जय!" प्रवेश करने पर रङ्ग-बरङ्ग निशानों से शोभित विस्तीर्ण पट-मण्डप है। भीतर लाल और हरे काग़ज़ के बने हुए गुच्छे और शृङ्खलाएँ लटक रही हैं। एक ओर कुछ ऊँची वेदी है जिस पर लाल कपड़ा पड़ा हुआ है। उसके ऊपर बीच में मझोले आकार की टेबिल रक्खी है। टेबिल पर कामदार रेशमी कपड़ा पड़ा है। उस पर चाँदी के दो गुलदानों में रक्खे बड़े-बड़े गुलदस्ते शोभा और सुगन्धि वितरण कर रहे हैं। टेबिल की दूसरी ओर बड़ी ही सुन्दर दो आराम-कुर्सियाँ रक्खी हैं, एक पर सभापति महाशय विराजेंगे और दूसरी है कविवर के लिए। वेदी पर और भी बहुत-सी कुर्सियाँ रक्खी हैं—इन पर कविवर का ख़ास भक्त-सम्प्रदाय और गण्यमान्य दर्शक बैठेंगे। वेदी के नीचे पहले कुर्सियों की तिहरी क़तार, और इसके पश्चात् बेञ्चों का सिलसिला है।

सबेरे से लेकर दिन भर रास्ते-रास्ते इस सभा का समाचार सुनाकर विज्ञापन बाँटे गये हैं। पाँच बजने के प्रथम ही अनेक लोग आने लगे। कोई कुर्सी पर और कोई बेञ्च पर बैठ गया; कुछ लोग विलम्ब देखकर इधर-उधर घूमने-फिरने लगे। स्थान-स्थान पर दस-दस पाँच-पाँच आदमियों की टोली में कई प्रकार का वादविवाद भी होने लगा। किसी ने कहा—"यह राजेन्द्र बाबू कौन हैं? कभी नाम तक नहीं सुना।—जो हो, तमाशा तो देख ही लेंगे।" इन्हीं में जिसे कुछ खोज-खबर थी उसने कहा—"हाँ हाँ—कुछ-कुछ याद है; मैंने पत्र में राजेन्द्रनाथ वसु की कविता पढ़ी है। पर ऐसी अच्छी तो है नहीं। इसको इस प्रकार कौन लोग नचा रहे हैं?" एक और बोला—"सुना नहीं? मैकमिलन राजेन्द्र बाबू की पुस्तक का अनुवाद करवाकर छपा रही है। पन्द्रह हज़ार रुपया देगी।"—एक चशमाधारी युवक बोला—"भेड़िया-धसान—महाशय भेड़िया-धसान—और कुछ नहीं। विलायत है असली अन्ध-उत्साह की जगह—कुछ नया मिला कि बस! नहीं तो सारे संसार के विश्रुत कवियों को छोड़कर राजेन्द्र बोस की कविता छपाना चाहेगी मैकमिलन?" सर्वत्र आलोचना में हँसी-मज़ाक़ का भाव ही अधिकाधिक सुन पड़ने लगा।

छः बज गये, किन्तु अभी तक कविवर का पता नहीं। सभापति भी विलम्ब कर रहे हैं। ठण्ड का वक़्त है, धीरे-धीरे अँधेरा हो गया। फ़र्राश ने एक-एक झाड़ को जलाना

आरम्भ किया। प्रबन्धकर्ता लोग व्यस्त होकर बीच-बीच में फाटक के पास जा खड़े होते हैं—उत्सुक दृष्टि से रास्ते की ओर देखते हैं।

इस समय सभा में काना-फूसी होने लगी। क्रम से शोर मचा—"आगये—आगये।" एक बड़ी-सी मोटर-कार तोरण के सामने खड़ी होकर मानो निष्फल गर्जन-तर्जन करने लगी। गाड़ी से उतरकर सभापति महाशय, कविवर, अधरचन्द्र बाबू एवं अन्य दो भक्तों ने सभा में प्रवेश किया। इसी समय सभा में स्थित एक भक्त ने ज़ोर से "वन्दे मातरम्" का घोष किया। विद्यालय के दो-चार बालकों को छोड़, उसमें और किसी ने साथ नहीं दिया।

सबके बैठ जाने पर हार्मोनियम बाजे के साथ अभ्यर्थना-सङ्गीत हुआ। अब रीति के अनुसार प्रस्तावित और समर्थित होकर कृष्णविहारी बाबू सभापति के आसन पर बैठे; सामने छपी-छपाई कार्य-सूची—प्रोग्राम—रक्खी थी।

एक भक्त ने "कवि राजेन्द्र की जय"-शीर्षक एक कविता बनाई थी; सभापति के अनुरोध करने पर उन्होंने, टेबिल की बग़ल में खड़े होकर, वह पढ़ सुनाई।

इसके पश्चात् सभापति महाशय ने ज़रा खाँसकर, और बदन पर पड़ी हुई शाल को इधर-उधर खींच-तानकर, हाथ में काग़ज़ों का पुलिन्दा लिया और—"आज हम लोग" से आरम्भ करके गम्भीर स्वर में एक अभिभाषण पढ़ा।

किन्तु सभा-स्थित लोगों ने ध्यान नहीं लगाया। सर्दार लोग बीच-बीच में चिल्लाने लगे—"बड़ा शोर होता है, उस ओर बड़ा गुल-गपाड़ा मचा है।" इतने पर भी लोग शान्त न हुए; अपनी-अपनी टोली में दबी आवाज़ से हँसी-मज़ाक़ आदि करने लगे।

राजेन्द्र बैठा-बैठा सभा की दशा देख रहा था। सभा से अश्रद्धा और चिढ़ाने की लहर बहकर मानो उसके सारे शरीर में आघात करने लगी।

सभापति महाशय का अभिभाषण समाप्त होने पर, किसी ने किसी प्रकार से हर्ष प्रकट नहीं किया; प्रत्युत शोर-गुल और भी बढ़ गया। दारुण निरुत्साह के मारे मानो राजेन्द्र का हृदय फटने लगा।

अब अभिनन्दन-पत्र पढ़े जाने का नम्बर है। सभापति के अनुरोध करने पर अधरचन्द्र बाबू टेबिल के सामने खड़े होकर पहले क्षीण स्वर में पढ़ने लगे। फिर उनकी कण्ठ-ध्वनि पर्दे-पर्दे पर बढ़ने लगी। क्रम से ज्योंही कहा—"हम यह सुनकर यत्परो नास्ति आनन्दित हुए कि श्रीमान् के अमर-काव्य 'नवगीति' के अँगरेज़ी अनुवाद को विलायत की विख्यात पुस्तक-प्रकाशक मैकमिलन-कम्पनी बड़े आदर के साथ प्रकाशित करने को उद्यत हुई है।"—त्योंही सभा में एक व्यक्ति ने खड़े होकर वज्र की भाँति कठोर स्वर में कहा—झूठ बात है!

सभा के समस्त लोग, चकित होकर, उसी ओर देखने लगे।

राजेन्द्र ने भी ध्यान से देखा, चेहरा बिलकुल अपरिचित है। सभापति महाशय ने खड़े होकर क्रुद्ध स्वर में कहा–तुम कौन हो?

वह बोला—हम कोई भी क्यों न हों। यह सच है कि राजेन्द्र बाबू के किसी काव्य को प्रकाशित करने के लिए मैकमिलन-कम्पनी उद्यत नहीं हुई है। वे लोग बिलकुल गदहे नहीं हैं।

सभापति ने और भी अधिक उत्तेजित होकर कहा—हमारे पास प्रमाण है।

उसने ऊँचे गले से कहा—तो दिखलाइए न प्रमाण।

सभापति—तुम कौन हो? तुम्हें प्रमाण दिखलाने की ज़रूरत? अभी सभा से निकल जाओ; हटो यहाँ से।

इस बार, सभा-स्थित अनेक लोग चिल्लाने लगे—प्रमाण तो दिखला देना चाहिए—ज़रूर दिखाना चाहिए।

तब राजेन्द्र ने खड़े होकर पाकेट से एक पत्र निकालकर सभापति को दिया।

"लीजिए, प्रमाण सुनिए"—कहकर सभापति ने हेडिंग और तारीख़ समेत पूरा पत्र पढ़ सुनाया। सभा बिलकुल निस्तब्ध है, सुई गिरने का भी शब्द सुन पड़ता है।

पत्र पढ़े जाने पर पूर्वोक्त व्यक्ति ने कहा—वह पत्र तो नक़ली है। उसी कागज़ पर गुप्त स्याही से इस बात का प्रमाण लिखा हुआ है। लेम्प की चिमनी की गर्मी के नज़दीक पत्र को ले जाइए, और देखिए, भीतर से काले-काले अक्षरों में क्या प्रकट हुआ जाता है।

सभापति महाशय टाल-मटोल करने लगे। तब सभास्थित अनेक लोग चिल्लाने लगे—प्रमाण चाहिए—प्रमाण चाहिए।

सभापति ने काँपते हुए हाथ से चिट्ठी को चिमनी के समीप किया। लहमे भर में उसे नीचे रखकर वे झुककर जाँच करने लगे। और भी कुछ लोग वहाँ देखने को पहुँच गये।

उस मनुष्य ने कहा—देखिए, क्या लिखा है। यही लिखा है न—

> हे राजेन्द्र छोड़ कलकत्ता, किष्किन्धा को जाओ;
> जहाँ तुम्हारा गेह पुरातन, नाम न और धराओ;
> पूरे हो कपिवर—कवि बनते, नाहक धूम मचाओ;
> होकर दूर सखा सच्चे से, जीवन भर पछताओ॥

यदि न लिखा हो तो छाती ठोककर कहो।

सभा-स्थित लोग टकटकी लगाकर सभापतिजी की ओर देखने लगे। अब क्या हुआ कि सभापतिजी टेबिल पर पत्र पटक कर, काँपते-काँपते, कुर्सी पर बैठ गये! दोनों हाथों से उन्होंने अपनी आँखें छिपा लीं।

सभा में बड़ा शोर-ग़ुल मचा। कोई सीटी बजाने लगा, कोई म्याऊँ-म्याऊँ करने लगा, और कोई शृगाल-सङ्गीत का अनुकरण करके 'हुआ हुआ' की ध्वनि से सभा को सर-गरम करने लगा।

❋ ❋ ❋ ❋

❋ ❋ ❋ ❋

सभा में तीनकौड़ी भी उपस्थित था। अन्यान्य मनुष्यों की भाँति वह भी विस्मय से हतबुद्धि होकर घर लौट गया; क्या करने गये थे और क्या हो गया, कुछ भी स्थिर न कर सका। एक जटिल पहेली की भाँति यह मामला उसे जँचने लगा।

दूसरे दिन मालूम हुआ कि यह उसके "भक्त" विहारीलाल की कीर्त्ति है। उसी ने अपने प्रेस में चिट्ठी लिखने के काग़ज़ पर मैकमिलन का नाम और पता आदि छपवाया था, और उस पर अर्क़ से 'किष्किन्धा'-वाली कविता लिख दी थी। फिर जाली चिट्ठी को टाइप-राइटर में छपवाकर, एक लिफ़ाफ़े में बन्द कर, विलायत में अपने किसी मित्र के पास भेज दिया। वहीं से लन्दन के डाकघर की मोहर को अपने वक्ष पर छपवाकर चिट्ठी आई थी। सभा में खड़े होकर जिस व्यक्ति ने प्रतिवाद किया था वह विहारीलाल के प्रेस का एक कम्पोज़िटर था। यह सुनकर घृणा से, लज्जा से, और दुःख से तीनकौड़ी मर्मान्तिक यातना भोगने लगा। उस दिन से उसने विहारीलाल का मुँह तक नहीं देखा।

राजेन्द्र का तो अब तक विश्वास है कि भीतर ही भीतर इसमें तीनकौड़ी अवश्य था।

नीलू भैया

१

नीलमणि के ससुर एक आला अफ़सर थे। विवाह करते समय उसके पिता ने सोचा था—"चलो, मेरे लड़के के लिए एक मुरब्बी हो गये।" नीलमणि जो सचमुच बी० ए० पास कर लेता और उसके ससुरजी जीवित रहते—तो वे सहज ही नीलमणि को डेप्युटी बना देते। किन्तु उसका ऐसा अभाग्य निकला कि दो में से एक भी न हुआ। इसी से नीलमणि आज पैंसठ रुपये महीने पर एक क्लर्क है!

भीमदास की लेन में एक छोटा-सा मकान किराये पर लिया है, इसमें नीलमणि परिवार समेत रहता है। उसके दो कन्याएँ और एक पुत्र है। दोनों ही बेटियाँ बड़ी हैं—कमला ग्यारह साल की है, सरला को पाचवाँ साल लगा है। बेटा सुशील सरला से दो बरस छोटा है।

इतनी कम तनख़्वाह में, कलकत्ते में, परिवार समेत रहना प्राणों को आफ़त में डालना है। नीलमणि जिस घर में रहता है उसकी हालत देखने से आँखें गीली हो जाती हैं। नीचे

के कोठों में अँधेरा भी है और सील भी। ऊपर भी इधर टूटा है, उधर फूटा है, कड़ियाँ और बल्लियाँ जीर्ण-शीर्ण हैं—छत न जाने किस दिन नीचे आ जाय। मरम्मत कराने की बात सुनते ही मकान-मालिक कहता है—किराया बढ़ जायगा, मरम्मत तो मैं कल ही करा दूँगा।—एक नौकरनी है—वह महीने में पन्द्रह दिन के लगभग काम पर आती है। जो रेट है उससे कुछ कम वेतन पर वह सन्तुष्ट है और बाज़ार से सौदा लाने के लिए जो पैसे दिये जाते हैं उन्हें वह चुराती नहीं—इन्हीं दो गुणों के कारण नीलमणि उसे अलग नहीं कर सकता।

नीलमणि के बेटे-बेटियों को ज़रा-से दूध के दर्शन तक दुर्लभ हैं। दो-एक सन्देश, रसगुल्ला—सो भी रोज़ नहीं—उन्हें भाग्य से मिल जाते हैं। गली के मोड़ पर जो दूकान है, वहाँ से एक पैसे की लाई लेकर वे पानी पीते हैं। नीलमणि और उसकी स्त्री, दोनों ही दोनों जून कोरा दाल-भात खाकर जीवन धारण करते हैं।

यही नीलमणि था किसी समय परले सिरे का शौक़ीन। एक दिन वह भी था जब नीलमणि सस्ते भाव का कपड़ा नहीं ख़रीदता था,—कम दाम का कोट और जूता वग़ैरह पहनने में वह अपना अपमान समझता था। पियर्स अथवा बिनोलिया के सिवा वह और क़िस्म का साबुन न लगाता था—गमछे से देह न पोंछता था—तौलिया ख़रीदता था। उसकी स्त्री का बाल्य-काल धनी पिता के घर बीता था—उसकी अन्यान्य

बहनें सम्पन्न घरों में ब्याही गई हैं—उस बेचारी के कष्ट का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। वह मुँह बन्द किये गृहस्थी का काम-धन्धा करती है; किन्तु जब अत्यन्त असह्य हो जाता है तब स्वामी को उलहना नहीं देती—स्वयं बैठकर रो लेती है। इससे नीलमणि का कष्ट तिल भर भी नहीं घटता।

पूस का महीना है। बकरीद की छुट्टी के कारण दफ़्तर बन्द है। ग्यारह बजे भोजन से छुट्टी पाकर नीलमणि बाज़ार के लिए तैयार हुआ। कमला के लिए फ़्लानैल की एक कुर्ती लेनी है, और बच्चे के लिए एक गलाबन्द तथा दो जोड़े रङ्गीन सूती मोज़ा। गृहिणी ने सन्दूक़ खोलकर स्वामी को चार रुपये दिये।

नीलमणि ने कहा—एक रुपया और दे सकती हो?

"क्यों?"

"सरला के लिए एक गुड़िया ले आऊँगा।"—कुछ दिन हुए, महल्ले की एक लड़की के हाथ में पोशाक पहनी-पहनाई गुड़िया देखकर सरला घर आई और वैसी गुड़िया के लिए बहुत मचल गई थी। तब नीलमणि ने कहा था—अच्छा रो मत, तनख़्वाह मिले तो ला देंगे।

गृहिणी ने कहा—एक रुपये की गुड़िया ख़रीद सकें, ऐसे दिन भी हमारे हैं! रुपया कहाँ से दें?

नीलमणि ने कहा—एक ही रुपया तो माँगता हूँ—दे सको तो दो। बेचारी उस दिन बहुत रोती थी।

"यह सच है कि रोई थी—और यह भी ठीक है कि एक रुपया कुछ बड़ी बात नहीं। लड़की के लिए खिलौना ले देना किस माँ-बाप को अच्छा नहीं लगता? किन्तु हमारा भाग्य ऐसा कहाँ है?"—यह कहकर गृहिणी आँचल से अपनी आँखें पोंछने लगी।

ठण्डी साँस लेकर और पाकेट में चार रुपये रखकर नीलमणि बाज़ार को चला।

बड़ी सड़क पर पहुँचकर नीलमणि ट्राम की प्रतीक्षा में मोड़ पर खड़ा हुआ था कि इतने में एक किराये की सेकण्ड क्लास गाड़ी उसके सामने से दौड़ती हुई निकल गई। तुरन्त ही सवार सिर निकालकर ज़ोर से चिल्लाने लगा—"गाड़ीवान—गाड़ीवान—रोको।"—गाड़ी खड़ी होगई। दरवाज़ा खोलकर एक व्यक्ति कूद पड़ा और फ़ुर्ती से नीलमणि के पास आकर बोला—नीलू भैया!

नीलमणि उसको देखने लगा—पहचान न सका। पोशाक उसकी अँगरेज़ों की ऐसी है, सिर पर टोप है—हाथ में क़ीमती छड़ी है—और मुँह में चुरुट दबा है। उम्र बत्तीस के लग-भग है—मोटा-ताज़ा है, गोल-मटोल चेहरा है—रङ्ग अच्छा खुलता हुआ है। पहचान न सकने से नीलमणि भौचक्का-सा होकर उसे देखने लगा।

इसी प्रकार आधा मिनट बीत गया। उसने कौतुक के साथ कहा—"नीलू भैया—पहचान न सके?—तुम भी अच्छे

निकले?—क्या बड़े आदमी हो गये हो!—क्या हुए? मालुम होता है, कुछ हाकिम-वाकिम हो गये?"—यह कहकर वह ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा।

सिर हिलाते-हिलाते उसका वह हँसना देखने से मानो नीलमणि की लुप्त-स्मृति लौट आई। उसने कहा—अरे—सुधांशु!

उसने नीलमणि को व्यंग-भाव से सलाम कर कहा—जी हाँ हुजूर। वही बन्दा है। बचपन से इतनी मित्रता—इतना प्रेम—और आज तो ज़रा भी न पहचान सके!

"भाई, पहचानें किस तरह? कोई पन्द्रह वर्ष से तो देखा ही नहीं। उस समय तुम दुबले-पतले थे—काले थे। अब ख़ासे गोरे-चट्टे—मोटे-ताज़े हो गये हो।"

"अभी तक मोटा न होऊँ? पश्चिम में रहता हूँ—आबहवा अच्छी है, घी-दूध सस्ता है—फिर भी मोटा न होऊँ? तुम कहाँ हो?"

"पास ही—१७ नम्बर भीमदास की लेन में।"

"क्या करते हो?"

"बङ्गालियों का जो सबसे बढ़कर अवलम्बन है—बाबूगिरी।"

"मैं लखनऊ में नौकर था—किन्तु वह नौकरी छोड़कर कलकत्ते आया हूँ। रोज़गार करूँगा। ग्रेट ईस्टर्न होटल में ठहरा हूँ। दो-तीन दिन और ठहरना होगा। शाम को घर मिलोगे?"

"मिलूँगा।"

"दिया जले के बाद आऊँगा। ओफ़! पन्द्रह वर्ष के बाद आज भेट हुई है। तुम्हीं को अपने होटल में बुलाता; किन्तु भाई, वहाँ बड़े-बड़े साहब न रहते हैं—वे तुम्हारी यह धोती और चादर देखकर नाक-भौं सिकोड़ेंगे। मैं ही आऊँगा। कौन गली बतलाई?"

"१७ नम्बर भीमदास की गली। पास ही है। इस रास्ते से ज़रा चलकर दहिनी तरफ़ एक बड़े खम्भोंवाला लाल मकान है—उसके सामने ही मैं रहता हूँ—१७ नम्बर।"

"अच्छा भाई—अब जाता हूँ। बहुत जल्दी है। घर के लोग साथ ही हैं न?"

"हाँ। आज शाम को यहीं भोजन करना।"

"बहुत अच्छा। रात को आठ बजे आऊँगा।"—कह-कर सुधांशु ने गाड़ी में सवार हो गाड़ीवान से कहा—ज़ोर से हाँको।

ऊपर जो कथोपकथन लिखा गया है उसमें दो-तीन मिनट से अधिक समय नहीं लगा। सुधांशु के चले जाने पर नील-मणि को ऐसा प्रतीत हुआ मानो लहमे भर के लिए एक उल्का-पिण्ड उसकी आँखों में चकाचौंध लगाकर अदृश्य हो गया है।

ट्राम पर सवार होकर नीलमणि सोचने लगा—सुधांशु को देखकर पहचानने के लिए उपाय नहीं है। तब दुबला-पतला था—छाती की हड्डियाँ देख पड़ती थीं—अब वही कैसा मोटा-

ताज़ा हो गया है—मनुष्य हो गया है। असल चीज़ पैसा है। पैसा पास होता तो क्या आज मेरा ऐसा ही चेहरा रहता? दोनों एक ही क्लास में पढ़ते थे—मैं सबसे अच्छा लड़का था—मैंने प्रथम श्रेणी में प्रवेशिका-परीक्षा पास की—और वह हुआ तीसरी श्रेणी में पास। एफ़० ए० तो वह पास ही न कर सका। कोनिक्स-सेक्सन् किसी तरह उसकी समझ में न आता था। उस समय कौन जानता था—जीवन-परीक्षा-क्षेत्र में वह मुझसे इतना आगे निकल जायगा? लखनऊ में नौकर रहने की बात कही—पर यह नहीं पूछा कि किस ओहदे पर काम किया है। अवश्य कोई न कोई बड़ी नौकरी करता होगा। नौकरी छोड़कर रोज़गार करने आया है—कुछ रक़म इकट्ठी कर ली है, तभी तो आया है! कहता था—ग्रेट ईस्टर्न होटल में ठहरा हूँ,—सुना है कि वहाँ का ख़र्च ८।१० रुपये रोज़ाना है। सुधांशु बड़ा आदमी हो गया है।

नीलमणि इसी प्रकार उधेड़-बुन करने लगा और ट्राम भी धर्मतल्ले में आ पहुँची। चाँदनी के सामने उतरकर नीलमणि ने सोचा—"आज उसे न्यौता दे दिया है—क्या खिलाऊँगा? हम प्रतिदिन जो दाल-भात, तरकारी-भाजी खाते हैं—क्या वही उसे परोसा जायगा? बचपन का मित्र है—न जाने आज कितने दिन के बाद भेट हुई है—फिर वह मामूली आदमी भी नहीं—उसका आदर-सत्कार यथारीति करना

होगा।" सोच-विचार करके नीलमणि ने चाँदनी में जाकर बच्चे के लिए गलाबन्द और मोज़े ख़रीदे। बाक़ी रुपये म्युनिसिपल मार्केट में ख़र्च हुए। डेढ़ सेर मटन, एक भेटकी मछली, और पन्द्रह बीस नारङ्गियाँ ख़रीदकर वह घर लौट आया।

२

नीलमणि के घर के नीचेवाले कमरों और कोठरियों की दशा का वर्णन पहले हो चुका है। कोई भलामानस आ जाय तो उसको वहाँ बैठाया नहीं जा सकता। ऊपर दो कमरे सोने के लिए हैं—उन्हीं में से एक ख़ाली किया गया। बिछौना और चटाई हटाकर, दो बालिकाओं की सहायता से, नीलमणि ने उसे साफ़ करना आरम्भ किया। एक लाठी के सिरे में बुहारी बाँधकर चारों ओर दीवार साफ़ की, फिर बाल्टी भर-भर कर पानी से फ़र्श को धो डाला। दीवारों में स्थान स्थान पर दाग़ थे—पान में खाने का जो चूना घर में रक्खा था उसी को घोलकर दाग़ पोत दिये गये।

बरामदे के कोने में टूटी-फूटी एक टेबिल बहुदिन-सञ्चित-धूलि से आत्मगोपन किये पड़ी थी। उसे धो-पोंछकर कमरे में रख दिया। उसके पाये बिलकुल कमज़ोर हो गये थे—पास बैठकर यदि उस पर ज़रा भी वज़न डाला जाय तो वह शब्द करती हुई दूसरी ओर को झुक जाती थी। स्थान-अस्थान पर कीलें ठोकने पर भी जब कुछ फल न निकला तब

नीलमणि ने एक रस्सी से उसके पाये ख़ूब कसकर बाँध दिये। इससे टेबिल कुछ स्थिर हो गई। घर में सिर्फ़ दो कुर्सियाँ थीं। एक बेत से बुनी हुई थी और दूसरी पर काठ का पटरा जड़ा था। बेतवाली पर सुधांशु बिठलाया जायगा और पटरेवाली पर नीलमणि बैठेगा। टेबिल की शोभा के लिए एक कपड़ा आवश्यक है—और यदि टेबिल पर कपड़ा न डाला जाय तो रस्सी से बँधे हुए पाये अपनी शोभा प्रकट किये बिना न रहेंगे। इसलिए गृहिणी के ओढ़ने का चौखानेदार 'रैपर' उस पर बिछा दिया गया।

यह सब करते-कराते चार बज गये। तब नीलमणि ने हुक्के को धो-माँजकर साफ़ किया, गज़ डालकर नैचे की सफ़ाई की। ताज़ा पानी कर दिया। एकाएक याद आई, वह साहब है—जो तम्बाकू न पावे तो? नीलमणि देख चुका है कि वह चुरुट पीता है। अतएव पैसे लेकर नील-मणि चुरुट ख़रीदने चला। किन्तु महल्ले की किसी दूकान में अच्छा चुरुट न मिला। पानवाले की दूकान में पैसे के दो वाले मामूली सिगरेट थे। इन्हें वह सुधांशु को किस प्रकार देगा? दूर किसी बढ़िया दूकान से चुरुट ले आने के लिए अब वक़्त नहीं रहा। पड़ोस में एक चुरुट-सेवी वकील थे। उनके यहाँ से नीलमणि पाँच चुरुट माँग लाया। चुरुट और दियासलाई की डिबिया, चाय की रकाबी में सजाकर, टेबिल पर रख दी गई।

सन्ध्या होने पर साफ़ धोती और कोट पहनकर नीलमणि अपने मित्र के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। आठ बजे, साढ़े आठ बज गये और नौ भी बज गये, पर अभी तक सुधांशु का पता नहीं! तो क्या भूल गया? नीलमणि और उसकी स्त्री, दोनों ही उत्कण्ठित हो गये। जो न आवे तो—इतना ख़र्च करके जो तैयारी की गई है वह निष्फल हो जावेगी! स्त्री ने कहा—वे बड़े आदमी हैं—विलसन के होटल के उस राजभोग को छोड़कर क्या ग़रीब की झोपड़ी में भोजन करने आवेंगे?

नीलमणि—सुधांशु तो उस मिजाज़ का आदमी नहीं है—कम से कम पहले तो था नहीं।

यही बातें हो रही थीं कि आवाज़ और रोशनी से तङ्ग गली को चकित करती हुई एक मोटरगाड़ी नीलमणि के टूटे-फूटे घर के दरवाज़े पर आ खड़ी हुई। नीलमणि ने झटपट दरवाज़ा खोला, बाहर निकलकर देखा—सुधांशु उतरकर रास्ते में खड़ा है, और मोटर में सवार एक साहब से बातचीत कर रहा है। दो-चार बातें कर 'गुड नाइट' की। मोटर-विहारी साहब चलते बने।

अब सुधांशु ने नीलमणि की ओर मुँह करके कहा—भैया, बड़ी देर हो गई! मालूम होता है, तुम चिन्ता कर रहे थे।

नीलमणि—ज़रूर। मैंने सोचा, शायद तुम भूल गये।

सुधांशु ज़ोर से हँसता हुआ बोला—यह तो कहोगे ही! इसकी तो आज दोपहर को ही परीक्षा हो गई कि स्मरण-शक्ति

किसकी कितनी प्रखर है।—यह कहते-कहते दोनों ने घर में प्रवेश किया।

ऊपर पहुँचकर सुधांशु ने कहा—नीलू भैया, इस घर में किस प्रकार रहते हो?

"भैया, करें क्या? इससे अच्छा मकान पावें किस तरह?"

कुर्सी पर बैठकर सुधांशु ने उत्तर दिया—कितने लड़के-बच्चे हैं?

"एक लड़का, दो बेटियाँ। और तुम्हारे?"

सुधांशु ने हँसकर कहा—भला मैं लड़के-बच्चे कहाँ पाऊँगा? मैंने व्याह कब किया है?

नीलमणि ने अचरज के साथ कहा—अभी तक व्याह नहीं किया! कहते क्या हो? भला व्याह क्यों नहीं किया?

"फुरसत ही न थी। दूसरों के बाल-बच्चों का लाड़-प्यार करता फिरता हूँ। अपने बेटे-बेटियों को तो बुलाओ, देख लूँ।"

नीलमणि ने कमला और सरला को बुला लिया। दोनों बेटियों ने सुधांशु को प्रणाम किया। कुर्सी के दोनों ओर खड़ा करके सुधांशु मीठी बातें कहकर उनका आदर करने लगा। अन्त में बोला—तुम्हारा भाई कहाँ है?

सरला ने कहा—वैया छोता श्रै।

सुधांशु ने नीलमणि की ओर देखकर पूछा—क्या कहा?

नीलमणि ने उत्तर दिया—कहती है, भैया सोता है। देखो न, लड़की पाँच बरस की हो गई फिर भी तुतलाना नहीं छूटा।

सुधांशु—इसकी चिन्ता नहीं। बरस-दो-बरस में छूट जायगा। लड़की ख़ूब चैतन्य है।

"समझ ख़ूब है इसमें। एक-एक बात ऐसी कहती है जैसे अस्सी बरस की बुढ़िया हो। वह इतनी याद रखती है कि बीच-बीच में अचम्भा-सा हो जाता है।"

बड़ी बेटी को सम्बोधन कर सुधांशु ने कहा—जाओ तो बेटी, अपने बाबू की एक धोती ले आओ। मैं पतलून उतारूँगा।

कपड़े उतारकर सुधांशु ने कहा—नीलू भैया, कम्बल-अम्बल, दरी-वरी नहीं है? वही न बिछाओ। बङ्गाली की सन्तान हूँ—ज़रा आराम से बैठूँगा—लेटूँगा, कुर्सी पर कहाँ तक बैठूँ? दिन भर घूमते-घूमते सुस्ती छागई है।

टेबिल-कुर्सी को एक तरफ़ हटाकर, दूसरे कमरे से तकिया और दरी लाकर नीलमणि ने बिछा दी। सिगरेट का पात्र पास रखकर कहा—"पिओ न।" सुधांशु ने एक ले लिया। उजेले में उसे अच्छी तरह उलट-पलट कर देखा और कहा—तमाखू-अमाखू नहीं है? रात-दिन चुरुट पीता रहता हूँ, इससे अच्छा नहीं लगता।

"हाँ हाँ—तमाखू भी मौजूद है।"—कहकर नील-मणि दूसरे कमरे में गया।

सुधांशु ने पुकारा—"ओ कमला—सरला!"—दोनों लड़कियाँ आकर सुधांशु के पास बैठ गईं। सुधांशु ने पूछा—अच्छा बतलाओ, हम तुम्हारे कौन हैं?

कमला—काका।

सरला—छाएब काका।

सुधांशु ने हँसकर कहा—चल, दूर हो! हममें तूने कहाँ से साहबी देख ली?

"नईं, आप छाएब औं। बिलछन के ओतल में रैते औ।"

"यह भी तुझे मालूम है?"—कहकर सुधांशु ने उसका गाल दबा दिया।

सरला ने उत्साहित होकर कहा—पों-पों कल के बाँछली बजातीं उई अवागाली में छवाल ओकल आये ओ।

इसके बाद ही हाथ में हुक्का लिये, चिलम की आग को फूँकता हुआ, नीलमणि आ गया। सुधांशु ने पूछा—नीलू भैया, तुम क्या अपने हाथ से हुक्का भर लाये? नौकरनी नहीं है?

"आज आई नहीं।"

"मुझसे क्यों न कहा, मैं भर देता। छोटे भाई के आगे—"

"अजी रहने भी दो—" कहकर नीलमणि ने हुक्के पर चिलम रक्खी। दो-एक कश लेकर सुधांशु को निगाली देकर कहा—पियो, खूब आती है।

तमाखू पीते-पीते सुधांशु ने कहा—नीलू भैया, किस दफ़्तर में काम करते हो?

"हिलरी सिमसन के यहाँ।"

"क्या महीना मिलता है?"

"पैंसठ रुपये।"

"गुज़र होजाती है?"

"लष्टम-पष्टम रो-गाकर हो जाती है। ठेल-ठाल कर पूरा करते हैं।"

"और कुछ आमदनी नहीं?"

"बिलकुल नहीं।"

सुधांशु गम्भीरता से बैठा-बैठा तमाखू पीने लगा। फिर नीलमणि के हाथ में निगाली देकर पूछा—कै बरस से नौकरी कर रहे हो?

"ग्यारह बरस हो गये। जिस साल बड़ो लड़की हुई उसी साल से नौकर हुआ हूँ। इसी से उसका नाम कमला रक्खा है।"

"बेटी व्याहने के लिए कितना जमा किया है?"

"जमा कहाँ से करूँगा? खाने-पीने के लिए ही तो नहीं होता।"

"तो फिर बेटी का व्याह किस तरह करोगे?

"भगवान् मालिक हैं।"

"भगवान् तो मालिक हई हैं"—कहकर सुधांशु चुप हो गया।

नीलमणि ने कहा—इन बातों की चिन्ता करने से क्या होगा ?—छोड़ो इन बातों को। अब अपनी कहो। एफ़० ए० में फ़ेल होने पर जब तुम कलकत्ते से चले गये और कह गये कि नौकरी करने वर्मा को जाते हैं तब से तो फिर तुम्हारी कुछ ख़बर ही नहीं मिली। वर्मा गये थे ?

"हाँ हाँ। दो साल तक वहाँ नौकरी भी की थी।"

"क्या नौकरी थी ? और छोड़ क्यों बैठे ?

टुङ्गू में एक्ज़िक्यूटिव इञ्जीनियर का हेडक्लर्क था। साहब से अनबन होने पर नौकरी छोड़कर सिङ्गापुर चला गया।

"एकदम सीधे सिङ्गापुर को ?"

"हाँ। वहाँ कुछ दिन तक चाय की दूकान की, पर दीवाला निकल गया। तब, वहाँ से जहाज़ में ख़लासी होकर मद्रास आया। मद्रास में कुछ दिनों तक एक छापे-ख़ाने में नौकर रहा। वहाँ से कराँची पहुँचा। कराँची से केटा—वहाँ पठान मेरी जान के भूखे हो गये, तब वहाँ से भागकर होल्कर रियासत में कुछ दिन तक आबकारी की दारोग़ागरी की। इसके बाद वहाँ से लखनऊ गया। लख-नऊ में ताल्लुक़दार्स बैङ्क में बाबू हो गया—अन्त में तीसरे वर्ष हेडक्लर्की मिल गई थी।"

"ओफ़! इतना लम्बा सफ़र कर डाला ? तो पठान लोग क्यों तुम्हारी जान के गाहक हो गये थे ?"

"बहुत लम्बा क़िस्सा है—छोटा-मोटा एक उपन्यास समझो।"

नीलमणि ने हँसकर पूछा—तो कोई नायिका-वायिका थी क्या ?

"थी क्यों नहीं। उसमान ने कहा—जगतसिंह, इस दुनिया में हम और तुम दोनों के लिए स्थान नहीं है।"—यह कहकर सुधांशु हँसने लगा।

"अच्छा, बतलाओगे भी, क्या बात थी ?"—कहकर नीलमणि सुधांशु से सटकर बैठ गया।

सुधांशु ने पहले क़िस्सा नहीं कहा। ज़रा ठहरकर कहा—वह बातें इस समय अच्छी नहीं लगतीं। भैया, फिर बतला दूँगा। तुम्हारी हालत देखकर मेरा चित्त बहुत उदास हो गया है। अच्छा, उस आफ़िस में तुम्हारी तरक़्क़ी की कैसी-क्या आशा है ?

नीलमणि ने ठण्डी साँस लेकर कहा—मरते समय तक सौ के ग्रेड तक पहुँच सकूँगा।

"बस ?"

"बस।"

सुधांशु कुछ देर आँखें मूँदे चित पड़ा रहा। फिर उठ बैठा और नीलमणि का हाथ पकड़कर बोला—नीलू भैया, नौकरी छोड़ दो। मेरे साथ चलो।"

"कहाँ ?"

"नौकरी छोड़ दो। नौकरी में कुछ रक्खा नहीं है भैया—कुछ भी नहीं। किसी तरह पेट भरने में ही समय निकल जाता है। लखनऊ में मुझे दो सौ रुपये मासिक वेतन मिलता था। साथ ही मेरा कुछ व्यवसाय भी था—गुप्त रूप से। एकाएक दाँव लग गया, व्यवसाय से कोई पचीस हज़ार रुपये हाथ लग गये। अब नौकरी छोड़ दी है और वही रक़म लेकर कोई रोज़गार करने आया हूँ। व्यवसाय की एक विशेष वस्तु है—कम से कम एक सहकारी मनुष्य—और वह हो पूर्णतया विश्वासी। मैं एक ऐसा आदमी चाहता हूँ जो बेजा तौर पर, अथवा रोज़गार में हानि पहुँचाकर, एक पैसा मिलता हो तो न ले—और लाख रुपये मिलें तो भी न ले। मैं तुम्हें लड़कपन से जानता हूँ—तुम्हीं ऐसे आदमी हो। तुम्हीं मेरा साथ दो।"

नीलमणि ने कुछ सोचकर कहा—तो कौन-सा रोज़गार किया है?

"अबरक का रोज़गार। एक पहाड़ लिया है, उसी में अबरक की खान है।"

"कहाँ?"

"धानबाद के समीप। अभी जिस साहब को देखा है उसी से ख़रीदा है। वह इज़ारेदार है। छोटा नागपुर के एक असभ्य जङ्गली राजा का पहाड़ है—उससे साहब ने इज़ारे पर ले लिया था। दो साल तक काम भी किया था। अब

उसने पाँच बरस तक के लिए मुझे अपनी तरफ़ से दर-इज़ारे पर दिया है। पन्द्रह हज़ार सालाना लगान देना होगा। लिखा-पढ़ी हो गई है। हरसाल पेशगी लगान देना होगा। पहले साल का लगान मैंने जमा कर दिया है।" यह कहकर सुधांशु ने कोट के भीतरी बुक-पाकेट से चमड़े का एक केस निकालकर नीलमणि को दिया। कहा—खोलकर देखो, उसमें रसीद है।

नीलमणि ने केस खोलकर देखा, उसमें पन्द्रह हज़ार रुपयों की रसीद है, और है नोटों की एक नत्थी। हर एक पाँच सौ रुपये का है। गिनकर नीलमणि हँसते-हँसते बोला—भाई, तुम्हारे इस रत्ती भर पाकेट-केस में जितनी रक़म है उसमें तो मेरी दोनों बेटियों का विवाह हो जावेगा।

सुधांशु—यह ठीक है। किन्तु यह रक़म मैंने नौकरी करके प्राप्त नहीं की—यह व्यवसाय की माया है। नौकरी के मुँह में झाड़ू मारो। छोड़ दो।

नीलमणि—अबरक की खान ली है। कैसी खान है? अच्छी है?

"अद्भुत है। मैं एक विशेषज्ञ इञ्जीनियर को साथ लेकर, तीन चार दिन तक, भली भाँति जाँच कर आया हूँ। इञ्जीनियर की राय है कि बारह महीने में बारह पञ्जे साठ हज़ार रुपये का अबरक निकलने में तो कोई सन्देह ही नहीं। अगर कुछ नुक़सान हो जाय—या घट-बढ़ निकले तो पचास हज़ार

का तो निकलेगा। इसमें से पन्द्रह हज़ार ख़र्चे का और पन्द्रह हज़ार किराये का निकाल दें तो बीस हज़ार मुनाफ़े में बचेंगे।

नीलमणि ग़रीब गृहस्थ है—इतनी बड़ी रक़म का हिसाब सुनने से उसका सिर घूमने लगा।

सुधांशु—क्या कहते हो नीलू भैया—चलोगे न ?

सन्दिग्ध स्वर में नीलमणि ने कहा—सुभीता होगा तो—

सुधांशु—सुनो नीलू भैया—मैं पहले से ही तुम्हें सब खुलासा बतलाये देता हूँ। लागत मेरी लगेगी—अर्थात् मैं ख़र्च करता हूँ—मेहनत सिर्फ़ तुम्हारी है। मैं तुम्हें शून्य हिस्सेदार मान लेता हूँ। मैं ऐसा न करके, एक निर्दिष्ट वेतन पर भी तुम्हें रख लेता—किन्तु दो कारणों से मैं ऐसा करना ठीक नहीं समझता। पहले—मैं यह पसन्द नहीं करता कि तुम मेरे नौकर बनो और मैं बनूँ तुम्हारा मालिक। दूसरे, हिस्सेदार होने से तुम जिस प्रकार तन-मन से रोज़गार की उन्नति के लिए जुटे रहोगे, वैसे बँधी तनख़्वाह पाने पर न तो करोगे—और न कर सकोगे। नहीं—नहीं—प्रतिवाद मत करो। मैं मनुष्य-चरित्र को ख़ूब जानता हूँ। इतनी ही उम्र में बहुत कुछ देख चुका हूँ, बहुत ठगा चुका हूँ—ठोकरें खाकर सावधान हुआ हूँ। मैं यह नहीं कहता कि बँधी तनख़्वाह पाने से तुम जान-बूझकर आलस्य करके मेरे काम में असावधानी करोगे। किन्तु यदि तुम्हारे उद्योग पर ही

तुम्हारा हानि-लाभ छोड़ दिया जाय तो तुम्हारा उद्योग और उत्साह आप ही बढ़ जावेगा।

नीलमणि ने सिर झुकाकर कहा—"तो जैसा ठीक समझो।"—उसने कुछ और कहने की चेष्टा की पर सङ्कोच के मारे चुप हो रहा।

सुधांशु ने उसके मन की बात को ताड़कर कहा—सभी बातें अभी से साफ़ हो जाने दो। मैं कहता हूँ, लागत मेरी है—सूझ भी मेरी है—मेहनत सिर्फ़ तुम्हारी है। अतएव मुनाफ़ा मुझे तुम्हारी अपेक्षा अधिक मिलना चाहिए। मुनाफ़े के हर रुपये पीछे चार आने तुम्हारे हों और बारह आने मेरे। यदि बीस हज़ार मुनाफ़े के बचें तो तुम्हारे पाँच हज़ार हुए। यदि इतना न हो—दस हज़ार ही मुनाफ़ा हो—अथवा आठ हज़ार ही हो—तो तुम्हारे हिस्से के दो हज़ार होंगे। इस नौकरी से तो मज़े में रहोगे। बोलो, क्या राय है?

नीलमणि के मन में दो प्रतिकूल शक्तियाँ एक साथ अपना प्रभाव फैलाने की चेष्टा कर रही थीं। पहली धनलिप्सा—दूसरी संशयबुद्धि। कहाँ सूखे पैंसठ रुपये और प्राणान्तक परिश्रम—और कहाँ ख़ासी आसूदगी। फिर मन में आता था "यो ध्रुवाणि परित्यज्य" इत्यादि—जो हो, किसी तरह लष्टम-पष्टम पेट तो भर जाता है,—यह नौकरी छोड़कर, उस अबरक की खान में जायँ और अन्त में यदि वह भी हाथ में न रहे तो! रोज़गार में जैसा मुनाफ़ा है वैसा ही टोटा भी

तो है। सुधांशु तो मुनाफ़े के बड़े-बड़े आँकड़े ही बतलाता है—कितना टोटा होने पर व्यवसाय की क्या अवस्था होगी—इस विषय में वह कुछ भी नहीं कहता।

नीलमणि को इस प्रकार चिन्ता-परायण देखकर सुधांशु ने कहा—तो क्या कहते हो नीलू भैया ?

नीलमणि—सोचकर उत्तर दूँगा।

सुधांशु ने उत्तेजित स्वर में कहा—"नानसेंस। इतनी चिन्ता किस बात की है ? हृदय में साहस को स्थान दो—साहस करके नौकरी को ठोकर मारो। साहस न होने ही से तो बङ्गाली कुछ कर नहीं सकते—सिर्फ़ क़लम रगड़ने का भरोसा है। तुम्हारा काम नहीं है—अच्छा, मैं भाभी से पूछता हूँ—यह कहकर—"भाभी, ए भाभी"—कहता हुआ सुधांशु नङ्गे पैरों रसोईघर के दरवाज़े पर पहुँचा।

नीलमणि की स्त्री उस समय सन्तरे के रस की खीर बना रही थी। सुधांशु के पहुँचते ही उसने बड़ा घूँघट खींच लिया। सुधांशु चौके के बाहर बैठ गया और अपनी बात, रेलगाड़ी की गति की भाँति, फुर्ती से कहने लगा। भविष्यत् का एक परम रमणीय उज्ज्वल शब्द-चित्र बनाकर उसने दिखा दिया।

सब बातें सुनकर नीलमणि की भार्या ने कमला से कहलवाया—सोचने के लिए एक रात्रि दीजिए। उनसे सलाह करके कल उत्तर दूँगी।

खा-पीकर सुधांशु पोशाक पहनते-पहनते बोला—तो मुझे कल किस समय तुम्हारा उत्तर मिलेगा ?

"तुम्हारे होटल में तो मुझे प्रवेश करने की आज्ञा न होगी ?"

"एक काम करो। कल ठीक सात बजे होटल के फाटक पर मिल जाना। मैं चाय पीकर निकलूँगा। लालदीघी की ओर घूमते-घूमते बातचीत हो जायगी।"

"बहुत अच्छा। मैं आ जाऊँगा।"

दूसरे दिन निर्दिष्ट समय पर नीलमणि होटल के सामने पहुँच गया। सुधांशु बाहर निकल आया। नीलमणि ने कहा—सलाह हो गई—नौकरी छोड़कर तुम्हारे साथ चलेंगे।

लालदीघी के किनारे घूमते-घूमते दोनों इस विषय पर और भी बातचीत करने लगे।

सुधांशु ने कहा—दफ़्तर से किसी तरह आज की छुट्टी लेकर मेरे साथ घूम-फिर सकते हो ?

"क्यों ?"

एक मोटर-कार ख़रीदूँगा—दो घोड़े लूँगा—और तुम्हारे लिए कुछ अँगरेज़ी ढँग के सूट सिलवाने हैं।"

नीलमणि ने हँसकर कहा—मेरे लिए अँगरेज़ी ढँग के सूट ?

"तो क्या वहाँ तुम धोती पहन सकोगे ? सर्वनाश ! तब तो जमादार और क़ुली तुम्हारी परवा भी न करेंगे। वहाँ मैं

हूँगा बड़ा साहब—और तुम होगे छोटे साहब। रीति के अनुसार स्टाइल में रहना होगा। भेख न हो तो क्या भीख मिल सकती है?"

"किन्तु इस समय तो मेरे पास रुपये नहीं हैं!"

"रुपयों की कमी नहीं है। अभी मैं ही दूँगा—तुम्हारे हिसाब में ख़र्च खाते लिख रक्खूँगा।"

बारह बजे, बड़े बाबू से कह-सुनकर नीलमणि ने छुट्टी ली। सुधांशु के साथ घूमकर दिन भर बाज़ार किया। पाँच हज़ार में एक मोटर-कार ले ली गई—सुधांशु ने दो हज़ार नक़द दिये—बाक़ी तीन हज़ार के लिए नोट लिख दिया कि हर महीने पाँच सौ के हिसाब से देकर छः महीने में पूरे तीन हज़ार अदा कर देंगे। बाइस सौ में एक सफ़ेद और एक लाल घोड़ा ख़रीदा। नीलमणि के लिए जिन सूटों का आर्डर दिया गया उनका मूल्य भी सौ रुपये से ऊपर था।

शाम को सुधांशु ने कहा—तो अब जाता हूँ भैया। मैं कल ही खान पर जाऊँगा। पहली जनवरी से काम आरम्भ करना है। तुम कल ही इस्तीफ़ा दे दो। एक महीने बाद मेरे पास आ जाना। यह पाँच सौ का एक नोट लो। सूट वग़ैरह की क़ीमत चुका देना—और जो कुछ ख़रीदना हो ख़रीद लाना। वहाँ आते समय एक सेकेण्ड क्लास का कमरा रिज़र्व करा लेना—रुपये बचाने के लिए निचले दर्जे में बैठकर मत आना—ख़बरदार। यदि पाँच सौ रुपये में काम

न हो तो मुझे तार दे देना—मैं और रुपये भेज दूँगा। इस समय मेरे पास अधिक रक़म नहीं है। भाभी को मेरा प्रणाम कहना। कह देना कि वक़्त नहीं मिला इसी से मैं मिलने को नहीं आ सका। धानबाद में फिर भेंट होगी। लो, अब जाता हूँ—गुडबाई।

सुधांशु का नवाबी काम देखकर नीलमणि दङ्ग हो गया था। ट्राम में आज वह प्रथम श्रेणी में बैठा। रह-रहकर उसके मन में होने लगा—"कौन जाने, शायद ऐसा दिन शीघ्र ही आवे जब मैं भी सुधांशु की भाँति, इसी तरह, हाथ बढ़ाकर कलकत्ते के बाज़ार में रुपये बखेरता फिरूँगा। सुधांशु की बात बहुत ही ठीक है—"वाणिज्ये वसते लक्ष्मीः।"

३

फिर पूस महीना आया—एक बरस बीत गया।

दोपहर का समय था। पहाड़ के पास, अपने बँगले के पीछे बरामदे में आराम-कुर्सी पर लेटा हुआ नीलमणि अँगरेज़ी में एक खनिजविद्या की पोथी पढ़ रहा था। उसकी स्त्री पास ही एक कुर्सी पर बैठी, बच्चे के लिए, पशमीने का गुलूबन्द बिन रही थी।

नीलमणि अब वह नीलमणि नहीं। "क्यों न होगा? पश्चिम में रहता है—अच्छा जल-वायु है—सस्ता घी-दूध है"—अब वह मोटा-ताज़ा हो गया है—उसका रङ्ग भी खुल

गया है। उसकी घरवाली का भी अब वह चेहरा नहीं। खुली साफ़ हवा में घूमने—प्रति दिन 'यह नहीं, वह नहीं' के पचड़े से दूर रहने से अब उसका अकाल-वार्द्धक्य तिरोहित हो गया है—देह में यौवन-लावण्य लौट आया है।

बच्चे को गढ़ूलने में बिठाकर एक नौकर हवा खिलाने को ले गया है। कमला, कमर में कपड़ा लपेटे, बरामदे के आगे रक्खे हुए फूलों के गमलों में हज़ारे से पानी दे रही है। नौकरनी के साथ सरला बड़े बाबू के घर चली गई है।

गमलों में पानी देकर कमला अपनी माँ के समीप आ खड़ी हुई। इतना-सा परिश्रम करने से, इस ठण्ड के समय में भी उसके ललाट में पसीना आ गया है। माता ने अपने आँचल से उसका पसीना पोंछकर कहा—जा बेटी, हाथ-मुँह धोकर धोती बदल ले।

कमला के चले जाने पर गृहिणी ने कहा—"हाँ जी—बेटी के विवाह की भी चिन्ता है? वह सयानी हो रही है।"—वास्तव में कमला बड़ी हो गई है। इस एक साल के भीतर तो वह दो बरस की बढ़वार में आ गई है।

पुस्तक से दृष्टि हटाकर नीलमणि ने पूछा—क्या कहा?

"कहती हूँ—बेटी के ब्याह के लिए एक-आध लड़का ढूँढ़ो—लड़की सयानी हो गई है।"

"इस जङ्गल में भला लड़का कहाँ मिलेगा?"

तो कुछ दिनों के लिए कलकत्ते चले जाओ। ज़रा हाथ-पैर हिलाओगे तो लड़का मिलेगा क्यों नहीं। तुम तो यहाँ से हिलना भी नहीं चाहते!"

"मैं यहाँ से जाऊँ तो यहाँ का काम कैसे बने! सुधांशु जो कलकत्ते का आना-जाना घटा दे, और यहाँ कुछ दिन जम कर रहे—काम-काज में मन लगावे—तो मैं जा सकता हूँ।"

"इस बार भला वे कलकत्ते में इतना विलम्ब क्यों कर रहे हैं? कब आवेंगे, कुछ ख़बर आई है?"

"आज ही आनेवाले हैं। स्टेशन पर उनकी हवागाड़ी गई है।"

"अच्छा तो उनसे कहो और काम समझाकर महीने भर के लिए हम सबको कलकत्ते ले चलो। कोई न कोई लड़का पक्का कर लिया जाय।"

"बड़ा ख़र्च होगा। जाने-आने का किराया लगेगा—इसके बाद वहाँ ठहरने के लिए किराये का मकान लेना होगा—इधर मेरे पास अधिक रुपये नहीं हैं। महीने भर और ठहरो, सालाना हिसाब हो जाने दो। मेरे हिस्से का मुनाफ़े का रुपया मिले तो कलकत्ते जाकर कहीं बातचीत पक्की करें।"

"हिसाब देखा है? साल के अन्त में कितनी जमा होगी?"

"इस साल, कोई सोलह हज़ार मुनाफ़ा हुआ है। मेरे हिस्से के चार हज़ार हुए। इसमें से कोई दो हज़ार तो ले ही चुका हूँ।"

गृहिणी ने टेढ़ी भौंहें करके कहा—दो हज़ार कब लिये?

"पाँच सौ तो कलकत्ते में ही—और यहाँ पर एक साल में कोई डेढ़ हज़ार। अब सिर्फ़ दो हज़ार रुपये मिलना चाहिए। और सब ख़र्च-वर्च करने पर, दो हज़ार में मन के माफ़िक़ क्या अच्छा लड़का मिल सकेगा?—एक साल और न ठहरो—अगले साल फागुन तक बेटी के विवाह में पाँच हज़ार तक ख़र्च कर सकूँगा।"

"और—जो अगले साल इतना मुनाफ़ा न हुआ तो?"

नीलमणि बड़ी विज्ञता से घृणा की हँसी हँसकर बोला—अधिक होगा—और भी अधिक होगा। पहले साल ख़र्च अधिक हो गया—सभी तरह के रोज़गार में होता है—इससे मुनाफ़े की रक़म थोड़ी बची। भरोसा है कि अगले साल कम से कम चौबीस हज़ार का मुनाफ़ा होगा।

"अच्छा, जो ठीक समझो, करो। किन्तु जल्दी कर डालते तो अच्छा होता।"

इसी समय भीतरवाले कमरे से "बाबू बाबू" ध्वनि हुई—सरला के उल्लसित कण्ठ का स्वर है। जूता पहने पट-पट करती हुई वह दौड़ी आई और बोली—बाबू, छायब काका आया ऐ।

नीलमणि—कहाँ है?

"इयाँ नईं। इच्टेछन छे मोतल गाली में भों-भों पों-पों कलके अपने बँगले में आया ऐ।"

माँ ने पूछा—तू ने देखा है ?

"आँ—मैं नौकलनी के छाथ आती थी—तभी मोतल गाली आई। छायव काका अमैं देख के ऊमाल गुमाने लगा।"

माँ ने हँसकर कहा—तू ने क्या किया ?

सरला ने विषण्ण स्वर में कहा—"मैं क्या कलती ? मेले पाछ ऊमाल नईं अै।"—फिर पिता की ओर घूमकर संकुचित स्वर में कहा—बाबू, अमें एक ऊमाल ले दे औल एक मोतलगाली।

नीलमणि ने कहा—बेटी, एक साथ इतने रुपये कहाँ पाऊँगा? अभी तो एक रूमाल ले दूँगा, मोटर फिर कभी।

पिता के घुटने पकड़कर लाड़ के स्वर में सरला ने कहा—नईं बाबू, अच्छा जो उपिया न ओ तो अबी मोतल गाली ले दो—ऊमाल फिल कभी ले देना।

यह बात सुनकर सरला के पिता-माता हँसी के मारे लोट-पोट हो गये। उनके साथ-साथ सरला भी हँसने लगी, किन्तु उसकी हँसी के भीतर सन्देह मौजूद था। भाव उसका यह था—तुम हँसते हो तो लो मैं भी हँसती हूँ—किन्तु हँसी का ऐसा क्या कारण उपस्थित हुआ है!

हँसी रुकने पर गृहिणी ने कहा—ले न दो उसको एक मोटरगाड़ी। छोटी-मोटी कार कितने में मिलेगी ?

"दो हज़ार में।"

"अच्छा तो ले दो। साहब काका की मोटर देखकर बिटिया ललचाती है। वह मुझसे न जाने कितने दिनों से

अपने मन की प्रार्थना एकान्त में जतला चुकी है। लज्जा के मारे तुमसे न कह सकती थी—आज कही दिया।"

नीलमणि ने कहा—अच्छा, इस बार कलकत्ते जाऊँगा तो न होगा तो एक ले लूँगा। पूरी क़ीमत एक साथ चुकता न करनी होगी—क़िस्तबन्दी कर दी जायगी।

एक दिन वह था—और एक दिन यह है। ठीक एक साल पहले—इसी सरला के लिए वह एक रुपये की एक गुड़िया ले देना चाहता था—पर अपनी दशा का स्मरण करके गृहिणी ने रुपया देना स्वीकार न किया था!

४

नीलमणि के बँगले से सुधांशु का बँगला प्रायः आध मील के अन्तर पर है। सुधांशु के आने का समाचार पाकर नीलमणि उससे मिलने के लिए तैयार हो रहा था। इसी समय सुधांशु का नौकर पत्र के साथ २० केंकड़े, १०० सन्तरे और टोकरी भर गोभी आदि तरकारी-भाजी ले आया। पत्र में लिखा था,—विशेष प्रयोजन है, शीघ्र मिलो।

केंकड़े, गोभी आदि देखकर नीलमणि ने स्त्री से कहा—तो फिर सुधांशु के लिए भी यहीं रसोई बनाओ—ब्यालू करने के लिए उसे यहाँ लिवा लाऊँगा।

गृहिणी ने स्वीकार कर लिया।

नीलमणि ने कपड़े पहनकर हाथ में छड़ी ली और बड़े साहब के बँगले की ओर क़दम बढ़ाये।

वहाँ पहुँचकर देखा, सुधांशु का चेहरा बिलकुल उतर गया है। रङ्गत फीकी है, आँखें धँस गई हैं, सिर के बाल इधर-उधर बिखरे हुए उड़ रहे हैं। पीछे के बरामदे में वह टेबिल के पास एक कुर्सी पर बैठा है—हाथ पर सिर रक्खे है, नीचे के ओठ को दाँत से दबा रहा है।

उसकी भाव-भङ्गी देख नीलमणि ने शङ्कित स्वर से पूछा—सुधांशु, तुम्हें क्या हो गया?

सुधांशु इतना अन्य-मनस्क था कि नीलमणि के आने की उसे आहट भी न मिली। उसने चौंककर कहा—नीलू भैया, आ गये?—बैठो।

नीलमणि बैठकर उसके मुँह की ओर चुपचाप देखने लगा। सुधांशु की थोड़ी देर प्रतीक्षा की। जब वह कुछ न बोला तब नीलमणि ने कहा—मामला क्या है? तुम्हारी तबीअत कैसी है?

"तबीअत? हाँ, अच्छी तो है।"

"क्या हुआ है?"

"नीलू भैया, बड़ी मुश्किल में पड़ा हूँ। सालाना लगान देने का वक्त़ है—पाँच दिन के बीच पन्द्रह हज़ार रुपये चाहिए—जो रुपये दाख़िल न किये जायँगे तो इज़ारा न रहेगा।"

नीलमणि—तो दाख़िल कर दो। बैङ्क में रुपये तो जमा हैं।

"बैङ्क में अब रुपया कहाँ? सिर्फ़ हज़ार रुपये के लगभग है।"

नीलमणि ने माना आकाश से गिरकर कहा—सिर्फ़ एक ही हज़ार!—और सब रुपये क्या हुए?

"रुपयों का और क्या होता है? सदा से जो हुआ करता है—उड़ गये।"

"कहते क्या हो? इतना रुपया ख़र्च हो गया! इस साल तो कोई सोलह हज़ार की बचत हुई है।"

"हुई है सही पर रुपया कहाँ है? सब फूँक दिया। मुनाफ़े का रुपया, और मेरी जो कुछ पूँजी थी वह सब साफ़ है।"

नीलमणि को लक़वा-सा मार गया। तो मेरा दो हज़ार भी डूबा! नीलमणि जानता था कि सुधांशु हर बार कलकत्ते जाकर आमोद-प्रमोद में, होटल के ख़र्च में, और चीज़-वस्तुएँ ख़रीदने में बहुत रुपया उड़ा रहा है; और इस विषय में वह बीच-बीच में भर्त्सना भी करता था। सुधांशु कह देता था—"स्त्री नहीं, कोई बाल-बच्चे भी नहीं हैं, मैं अब किसके लिए धन संग्रह करूँ?—जो मिलता है, ख़र्च कर देता हूँ—सदा से मेरा यही हाल है।"—किन्तु नीलमणि स्वप्न में भी न जानता था कि सुधांशु इतना रुपया फूँक चुका है—मुनाफ़े का तमाम

रुपया एवं अपना पूर्व-सञ्चित समस्त मूलधन भी उड़ा चुका है। पट्टे में कड़ी शर्त है—साल तमाम होने के दो हफ़्ते पहले ही अगले साल का पूरा लगान यदि जमा न किया जायगा तो इज़ारा रद हो जावेगा—नीलमणि को यह बात भी मालूम थी। अतएव, वह भली भाँति समझ गया कि कैसी गुरुतर दशा उपस्थित है।

सुधांशु ने कहा—अब क्या उपाय है? पाँच हज़ार क़र्ज़ में मिलने का भरोसा है, बैङ्क में एक हज़ार जमा है—मेरे पास भी हज़ार रुपये के लगभग मौजूद है—अब आठ हज़ार की कमी है। कुछ तुम्हारे पल्ले भी है?

"अधिक से अधिक पाँच सौ।"

"भाभी के पास कुछ नहीं है?"

"जो उसका गहना-गुरिया बेचा जावे तो पाँच सौ और मिल जावेंगे।"

"सात हज़ार की कमी रही।"

दोनों कुछ देर निस्तब्ध बैठे रहे। सन्ध्या हो गई। अन्धकार धीरे-धीरे पृथ्वी को छिपा रहा है। नीलमणि अपार चिन्ता-सागर में ग़ोते खाने लगा। उसके मन में होने लगा—"हाय हाय! ऐसा व्यवसाय, ऐसा कारबार, सिर्फ़ अपरिणामदर्शी के अपव्यय से भस्मसात् हो गया! क्या होगा—अब क्या उपाय है? सुधांशु तो क्वारा है—जहाँ रहेगा, पैदा करके पेट भर लेगा। मेरे लिए क्या उपाय है?—बेटे-

बेटियों और स्त्री को लेकर कहाँ जाऊँगा?—भाग्य ने मेरे साथ यह कौन-सा खेल खेला! नौकरी गई—अब फिर कलकत्ते में जाकर नौकरी के लिए उम्मेदवारी करनी पड़ेगी। कुल जमा-जथा पाँच सौ रुपये हैं—उससे अब कितने दिन तक गुज़र होगी! कमला के विवाह के लिए ही क्या किया जायगा?

कमरे में नौकर रोशनी कर गया। सुधांशु एकाएक कुछ सोच-विचार कर भीतर चला गया। टेबिल के पास बैठकर चिट्ठी के कागज़ पर कुछ लिखने लगा। कोई बीस मिनिट के पश्चात् बाहर आकर देखा, नीलमणि उसी अँधेरे बरामदे में अभी तक माथे में हाथ लगाये बैठा सोच रहा है। सुधांशु ने कहा—नीलू भैया—यह कागज़ रख लो।

नीलमणि ने पूछा—कैसा कागज़?

"हमारा विल।"

यह बात सुनकर नीलमणि का हृदय धक से हो गया। उसे आशङ्का हुई—शायद रात को सुधांशु आत्महत्या करेगा। कैसा सर्वनाश है!—झट से उठकर बोला—विल किस तरह का? तुम्हारा मतलब क्या है?

उसके मन का भाव समझकर सुधांशु हँस पड़ा। उसने कहा—डर की बात नहीं है नीलू भैया—यह उस ढँग का विल नहीं है। मैं एकाएक मरता नहीं—मैं वैसा आदमी ही नहीं हूँ। बैठो बैठो; मेरा जो मतलब है सो सुनो। सब कहता हूँ।

नीलमणि बैठ गया। सुधांशु कहने लगा—जब रुपये मिलने का कोई उपाय नहीं है तब इस व्यवसाय को समेटना पड़ा। अब मैं दूसरे व्यवसाय की तजवीज़ करता हूँ।—कलकत्ते में इधर कई दिनों से मैं सिर्फ़ क़र्ज़ लेने की धुन में घूमता नहीं फिरा। यदि रुपया न मिले—तो क्या करूँगा, कहाँ जाऊँगा—सब ठीक-ठाक कर आया हूँ। सीलोन में बड़े-बड़े जङ्गल हैं—खूब नारियल फलते हैं। एक बड़ा-सा जङ्गल ठेके पर ले लूँगा और नारियल गिरवा-गिरवाकर कुछ तो समूचे और कुछ तैल पिलवाकर, पीपों में भरकर भारतवर्ष में भेजूँगा—कुछ गिरी के टुकड़े चाशनी में पगवाकर शीशियों में भरवाऊँगा और शीशी पर 'कोकोनट ड्राप्स' का लेबिल चिपकाकर विलायत भेज दूँगा—वहाँ के लड़के-बच्चे ख़ूब खाते हैं। बैङ्क के हज़ार रुपये, मेरे पास जो हज़ार रुपये हैं वह, और दो हज़ार में दोनों घोड़े बेच दूँगा—यही चार हज़ार अब की बार मेरा मूलधन है। जहाज़ में डेक-पैसेञ्जर होकर जाता हूँ—इस बार अब नवाबी नहीं करूँगा। जितना हो सकेगा ख़र्च घटाना होगा। ऐसा अच्छा कारबार मिट्टी में मिल गया! तुम्हारे आने से पहले—पहाड़ की ओर देख-देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा था। जाने दो "धन-दौलत आनी-जानी है—यह दुनिया राम-कहानी है।" हाँ—इसके बाद मेरे दिल की बात है। इस व्यवसाय में तुम्हारे दो हज़ार रुपये मेरे पास रह गये। उसके बदले मैं अपनी मोटर-कार तुम्हें दिये जाता

हूँ। कलकत्ते ले जाकर वहाँ इसे बेच डालना। और इस बँगले में मेरा जो असबाब है इसे भी तुम बेच देना। कई महीने से मेरे निजी नौकर, खान के बाबू और जमादार प्रभृति को तनख़्वाह नहीं मिली—इन रुपयों से उनका हिसाब चुका देना। जिसे जितना देना है, उसकी एक फ़ेहरिस्त मैं तुम्हें दे जाऊँगा। नौकरी छुड़वाकर तुम्हें ले आया था—बड़ी आशा करके ले आया था—पर वह आशा सफल न हुई। जाने भी दो। तुम अब कलकत्ते में नौकरी खोजोगे न?—मेरी बात मानो तो सुनो—नौकरी मत करो, कोई न कोई रोज़गार हथिया लो।—और, ईश्वर की इच्छा से यदि सीलोन में नारियल के कारबार में मुझे गुञ्जाइश हो—और तुम यदि आना चाहो—तो चले आना।

कुछ देर दोनों चुपचाप बैठे रहे। इसके पश्चात् नील-मणि ने पूछा—सीलोन कब जाओगे?

"कल सवेरे की गाड़ी से ही कलकत्ते जाऊँगा। वहाँ तीन-चार दिन ठहरकर जहाज़ पर सवार हूँगा।"

"तो अपनी भाभी से न मिलोगे? उसने तो आज तुम्हें वहीं ब्यालू करने बुलाया है।"

सुधांशु ने ज़रा सोचकर कहा—भाई, इसके लिए माफ़ करो। यह मुँह—इस समय उन्हें न दिखाऊँगा। यदि ईश्वर कभी दिन फेरे—तो फिर—

सुधांशु का गला भर आया था। बात पूरी न कर सका। आँखों से दो बूँद आँसू, उस अन्धकार में, उसके गालों पर से बहकर कोट की आस्तीनों पर गिरे।

नीलमणि किसी प्रकार बँगले पर लौट गया। जो अँधेरे में भी सब कुछ देख सकते हैं उन्हीं ने देखा है कि वह रात्रि इस भग्न-हृदय हताश्वास दम्पती को किस तरह बीती।

दूसरे दिन सबेरे नीलमणि सुधांशु के बँगले पर गया और वहाँ से उसे स्टेशन तक पहुँचाने गया। उसे गाड़ी में बिठाकर वह मोटर लिये शून्य मन से बँगले पर लौट आया।

सरला एक पेनीफ्राक पहने नंगे पैरों बरामदे के आगे खेल रही थी। उसकी माँ, आँखों में आँसू भरे, रेलिंग पकड़े खड़ी-खड़ी स्वामी के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। उस समय दस बजे होंगे। इसी बीच सरला ने किसी तरह सुन लिया था कि काका ने हम लोगों को अपनी मोटर दे दी है—किन्तु इस बात पर उसे विश्वास नहीं हुआ। पिता को अकेले ही मोटर से उतरते देख उसने चटपट पास जाकर पूछा—बाबू, छायब काका ने अे मोतल अमें दी अै?

नीलमणि ने उदासी-भरी नज़र से कन्या को देखकर कहा-हाँ।

सुनते ही सरला खिलखिलाती हुई दोनों हाथ ऊपर उठा-कर नाचते-नाचते बरामदे में पहुँची और ज़ोर-ज़ोर से कहने लगी—अले बैया, ओ दीदी, जल्दी आ जल्दी आ। छायब काका ने अमें मोतल गाली दी अै। जल्दी आ।

सरला का यह आचरण देख, इतने दुःख में भी, उसके माँ-बाप के ओठों में हँसी दीख पड़ी।

यहाँ सब बेच-बाचकर और भुगतान करके नीलमणि ने धानबाद से डेरा उठाया। वह परिवार के साथ कलकत्ते गया। अपने उसी पुराने आफ़िस के बड़े बाबू के हाथ-पैर जोड़कर, बड़े साहब के आगे रो-गाकर नीलमणि ने फिर नौकरी प्राप्त कर ली। किन्तु साहब ने दण्ड-स्वरूप उसका वेतन पाँच रुपये कम कर दिया।

ढाई हज़ार में मोटर बिकी। उसमें से डेढ़ हज़ार ख़र्च करके वैशाख में कमला का विवाह किया गया; बाक़ी हज़ार रुपया, सरला के विवाह के लिए, पोस्ट-आफ़िस के सेविंग्स बैङ्क में जमा है।

बाबू प्रभातकुमार मुखोपाध्याय की कहानियाँ

नव-कथा—इसमें सुन्दर-सुन्दर सत्रह कहानियाँ हैं। कहानियों में से एक है प्रसिद्ध औपन्यासिक बङ्किम बाबू के सम्बन्ध में और एक है विद्यासागर महाशय के सम्बन्ध में सत्यघटनामूलक। सुन्दर सजिल्द प्रति का मूल्य १॥।) एक रुपया बारह आने।

पत्र-पुष्प—इसमें प्रभात बाबू की छः कहानियां—१—सामाजिक समस्या-समाधान, २—पिल्ला, ३—जासूसी का जञ्जाल, ४—अद्वैतवाद, ५—कन्या-दान और ६—सती-दाह का संग्रह है। कहानियाँ एक से एक बढ़कर चित्ताकर्षक हैं। प्रत्येक कहानी से कुछ न कुछ शिक्षा मिलती है। भाषा बिलकुल सीधी-सादी है। पढ़ने में मौलिक आख्यायिकाओं का मज़ा आता है। पुस्तक एक बार हाथ में लेने पर समाप्त किये बिना छोड़ने को जी नहीं चाहता। सजिल्द प्रति का मूल्य १।) एक रुपया आठ आने।

पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

षोड़शी—वङ्ग-भाषा में कहानियाँ लिखने में बाबू प्रभात-कुमार मुखोपाध्याय ने ख़ासा नाम कमाया है। आपकी लिखी उत्तमोत्तम सोलह कहानियों का इसमें सङ्ग्रह है। मूल्य १।) एक रुपया चार आने।

देशी और विलायती—यह प्रभात बाबू की बढ़िया-बढ़िया कहानियों का संग्रह है। इसमें 'पूर्व' और 'पश्चिम' का अद्भुत सम्मिलन है। एक ओर विलायती चित्र है, तो दूसरी ओर भारतीय। देखने ही के योग्य है। प्रभात बाबू बँगला के प्रसिद्ध कहानी-लेखक हैं। हिन्दी के पाठक आपकी रचनाओं से परिचित हो चुके हैं। इनकी शैली की प्रशंसा करना व्यर्थ है। मूल्य २॥) दो रुपया आठ आने।

रत्नदीप—यह शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास सचमुच रत्नों का दीप है। इसमें पुरुष-चरित्र का उत्कर्ष दिखलाया गया है। इसे पढ़ते पढ़ते आप कभी विस्मय से अभिभूत होंगे, कभी करुणा से द्रवित होंगे, कभी क्रोध के वशीभूत होंगे और कभी भक्तिभाव से पुलकित हो जायँगे। पढ़ने में ऐसा मन लग जायगा कि खाने-पीने की तक सुध न रहेगी। इसकी भाषा सरल, सरस और साधारण बोल-चाल की है। पुस्तक सचित्र है। सुन्दर जिल्द है। मूल्य केवल २) रु०।

पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

रवि बाबू की छोटी छोटी कहानियाँ

गल्पगुच्छ—ये कहानियाँ क्या हैं मनुष्य के अन्तर्जगत् के रहस्यागार हैं। एक-एक कहानी एक-एक भाव का जीता-जागता चित्र है। कभी पढ़ते-पढ़ते आप आश्चर्य से चकित होंगे, कभी भय से स्तम्भित होंगे, कभी शोक से व्यथित-चित्त होंगे और कभी हँसते-हँसते लोट जायँगे। इनमें कहीं बाल्यरूप का सरल चित्र है, कहीं युवावस्था की उन्मादकारिणी छवि है, कहीं मिलन है और कहीं विच्छेद; कहीं आशा है और कहीं अनन्त निराशा। पढ़कर देखिए तो आपका हृदय उच्च भावों से कैसा परिपूर्ण होता है। मूल्य पहले भाग का ।।।) बारह आने और दूसरे का १) एक रुपया।

मुकुट—इस उपन्यास में कवीन्द्र रवीन्द्र ने बड़ी विलक्षणता के साथ दर्शाया है कि भाई-भाई में परस्पर अनबन होने का परिणाम अन्त में क्या होता है, बड़ा शिक्षाप्रद उपन्यास है। इसे पढ़कर लोग वैमनस्य के बीज को दग्ध कर सकते हैं। मूल्य केवल ।) चार आने।

पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

साहित्य-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर

के

चुने हुए उपन्यास

राजर्षि—इस ऐतिहासिक उपन्यास में बतलाया गया है कि राज्य के लोभ से सगा भाई अपने पूज्य बड़े भाई से किस प्रकार शत्रुता ठानता है; मन्दिर का पुजारी हठ में आकर किस प्रकार अपने भूपाल के प्रति विद्रोहाचरण करता है और राजा फिर भी क्षमा कर देता है। अन्त में पापियों को स्वयं अपनी करनी पर पछताना पड़ता है। विचित्र शिक्षाप्रद कथानक है। मूल्य १।) एक रुपया चार आने।

गौरमोहन—जिन्होंने रवि बाबू के उपन्यास पढ़े हैं उनके आगे गौरमोहन की प्रशंसा करना व्यर्थ है। यह उपन्यास सामाजिक है। अतएव इसमें सामाजिक उलझनों का ख़ासा चित्र है। इसको पढ़िए और हिन्दू-समाज की

पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

ग्रन्थियों को देखिए कि कैसी उलझी हुई हैं। कथानक के नायक गौरमोहन की दृढ़ता, धर्म-प्राणता, विद्वत्ता, देश-प्रेम, गुरु-भक्ति और समाज-सेवा का वर्णन पढ़ने योग्य है। स्त्री-पात्रों में आनन्दी की विचार-धारा देखकर विस्मित होना पड़ता है। बीच बीच में ललिता और सुशीला, ब्रह्म करके, गौरमोहन और उसके मित्र विनय को समाज के अत्याचार दिखलाती हैं। परेश बाबू का गाम्भीर्य देखते ही बनता है। ये कभी अधीर नहीं हुए। इस उपन्यास में शिक्षिता लड़कियों के उन्नत विचार तथा नये और पुराने विचारों का ख़ासा मिश्रण है। पृष्ठ संख्या ८०० से ऊपर। मूल्य दोनों भागों का ४) चार रुपये।

विचित्रवधू-रहस्य—यह "बऊ ठाकुरानीर हाट" नामक उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद है। महाराज प्रतापादित्य का बात बात पर असीम क्रोध करना, युवराज उदयादित्य की और महाराज के चाचा वसन्तराय की सरलता, युवराज्ञी सुरमा की लानत-मलामत और अन्त में देह-त्याग, महाराज के जमाई राजा रामचन्द्र राय का लड़कपन, रमाई भाँड़ की नादानी और महाराज के चाचा की वधिक के हाथ हत्या एवं राजकुमारी विभा का आत्मोत्सर्ग एक से एक बढ़कर घटनाएँ हैं। मूल्य १) एक रुपया।

पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

आश्चर्य घटना—(**नौका डूबी**) इसकी घटनाओं का वैचित्र्य पढ़नेवाले को चक्कर में डालता है। नलिनी और कमला दोनों ही के चरित्र विभिन्न हैं। पर हैं दोनों ही भली। नलिनी पढ़ी-लिखी होने पर भी दुनियादारी से परिचित नहीं और कमला साधारण लिखना-पढ़ना जानती हुई गृहस्थी के कामों में साक्षात् गृह-लक्ष्मी है और यही कारण है कि आरम्भ में क्लेश सहकर भी अन्त में वह सुख की गृहस्थी की अधिकारिणी हुई। उच्च शिक्षा-प्राप्त नलिनी और रमेश दोनों ही झमेले में पड़ गये। विचित्र सामाजिक कथानक है। पृष्ठ-संख्या ४५० से ऊपर। मूल्य १॥) एक रुपया आठ आने।

डाकघर—इसकी तारीफ़ करना व्यर्थ है। कहानी के बहाने एक विशेष विषय पर विचार किया गया है। ज़रा ध्यान देने पर असल बात समझ में आजाती है। बड़ी मजेदार सरस कहानी है। विषय को समझाने के लिए आवश्यकतानुसार टिप्पणियाँ दे दी गई हैं। मूल्य ।-) पाँच आने।

मिलने का पता—

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग